Con. 4. VIII-13.49
320

अंक 8
संख्या 11

सत्यमेव जयते

बुधवार,
1 जून
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का प्रारूप–(जारी)
(अनुच्छेद 137 से 145 पर विचार) 735 क-798

भारतीय संविधान सभा

बुधवार, 1 जून सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली, में प्रातः आठ बजे अध्यक्ष महोदय (माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद) के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का प्रारूप—(*जारी*)

अनुच्छेद 137

***अध्यक्षः** वह आज अनुच्छेद 137 से आरंभ करेंगे। इस पर एक संशोधन है जिसकी सूचना श्री ब्रजेश्वर प्रसाद ने दी है, किन्तु वह नकारात्मक है।

(संशोधन संख्या 2111 पेश नहीं किया गया।)

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): पहले जो विनिश्चय हो चुका है उसे देखते हुए यह अनुच्छेद पेश नहीं किया जा सकता।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): इस पर सभा में मत लिया जाना चाहिये।

***माननीय डा. बी. आर. अम्बेडकर** (बम्बई : जनरल): इस पर मत लिया जा सकता है।

***अध्यक्षः** मैं इसका यह अर्थ लगाता हूं कि कोई और संशोधन पेश नहीं किया जायेगा।

अब प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 137 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 137 संविधान में से निकाल दिया गया।

अनुच्छेद 138

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान्, क्या मैं यह सुझाव दे सकता हूं कि जो परिवर्तन पहले ही किया जा चुका है उसे देखते हुए कोई विकल्प बना लिया जाये?

---

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 138 के स्थान पर निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

'दस अध्याय में उपबन्ध न की हुई किसी आकस्मिकता में राज्य के राज्यपाल के कृत्यों के निर्वहन के लिये राष्ट्रपति, जैसा उचित समझे, वैसा उपबन्ध बना सकेगा।' ''

मैं बिना किसी व्याख्या के इस संशोधन को पेश करता हूं। इस पर टिप्पणी अपेक्षित भी नहीं है।

(संशोधन संख्या 2132, 2134 और सूची 3 का संख्या 169 पेश नहीं किये गये।)

***श्री मोहम्मद ताहिर** (बिहार : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 138 में, 'Chapter' (अध्याय) शब्द के स्थान पर 'Constitution' (संविधान) शब्द रख दिया जाये।''

श्रीमान्, मेरे विचार में 'संविधान' शब्द अधिक उपयुक्त और व्यापक है। यदि मेरे मित्र इसे स्वीकार कर लें, तो यह 'अध्याय' शब्द के स्थान पर प्रयुक्त हो सकता है।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है।

''कि अनुच्छेद 138 के स्थान पर, निम्न अनुच्छेद रख दिया जाये:

''इस अध्याय में उपबन्ध न की हुई किसी आकस्मिकता में राज्य के राज्यपाल के कृत्यों के निर्वहन के लिये राष्ट्रपति, जैसा उचित समझे वैसा, उपबन्ध बना सकेगा।

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 138 में 'अध्याय' शब्द के स्थान पर 'Constitution' (संविधान) शब्द रख दिया जाये।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 138 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 138 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 139 और 140

***अध्यक्षः** इन्हें हटा देना होगा क्योंकि वे पहले किये गये विनिश्चय से असंगत हैं, किन्तु मुझे बताया गया है कि औपचारिक रूप में उन पर मत लेना अपेक्षित है।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 139 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 139 संविधान से निकाल दिया गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 140 संविधान का भाग हो।

प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 140 संविधान से निकाल दिया गया।

अनुच्छेद 141

***अध्यक्षः** इस अनुच्छेद के सम्बन्ध में दो संशोधन हैं। एक तो संशोधन संख्या 2148 है और उस पर पं. ठाकुरदास भार्गव का एक संशोधन सूची 3 का संख्या 170 है।

(संशोधन संख्या 2148, सूची 3 में संख्या 170 और संख्या 2149 से 2152 तक पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 141 संविधान का भाग हो।

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 141 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 142

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** श्रीमान्, मैं औपचारिक रूप में संशोधन संख्या 213 पेश करता हूं और उसके स्थान पर मैं संशोधन संख्या 184 (तृतीय सप्ताह-सूची 4) पेश करता हूं:

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

''कि अनुच्छेद 142 के स्थान पर निम्न रख दिया जाये:

'142, इस संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार उन विषयों तक होगा जिनके बारे में उस राज्य के विधान-मंडल को विधि बनाने की शक्ति है'।''

श्रीमान्, इससे अनुच्छेद की भाषा सरल हो जायेगी और खंड (ख) भी हट जायेगा जिससे कि उलझनें पैदा होती हैं क्योंकि इसमें संविधान के मसौदे के कुछ पहलूओं की चर्चा है जिनके विषय में हमने अब तक कोई विनिश्चय नहीं किया है, क्योंकि यह प्रथम अनुसूची के भाग 3 में के राज्यों के बारे में हैं जिनके विषय में बाद में विनिश्चय करना होगा जबकि उन राज्यों की स्थिति ठीक प्रकार परिभाषित की जायेगी। अत: श्रीमान्, यह संशोधन आवश्यक है और मुझे आशा है कि सदन इसे स्वीकार कर लेगा।

(संशोधन संख्या 2154 पेश नहीं किया गया।)

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 142 के स्थान पर निम्न रख दिया जाये:

'142. इस संविधान के उपबन्धों के अधीन रहते हुए प्रत्येक राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार उन विषयों तक होगा, जिनके बारे में उस राज्य के विधान मंडल को विधि बनाने की शक्ति है।' ''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 142 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 142 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 143

(संशोधन संख्या 2155 और 2156 पेश नहीं किये गये।)

***श्री एच.वी. कामत:** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 143 के खंड (1) में 'except in so far as he is by or under this Constitution required to exercise his functions or any of them in his discretion.' ये शब्द निकाल दिये जायें।''

यदि इस संशोधन को सभा स्वीकार कर ले तो अनुच्छेद 143 का यह खंड इस प्रकार बन जायेगा:

> ''राज्यपाल को अपने कृत्यों का निर्वहन करने में सहायता और मंत्रणा देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी, जिसका प्रधान मुख्यमंत्री होगा।''

श्रीमान्, इस खंड के पढ़ने से यह पता लगता है कि भारत शासन अधिनियम, 1935 की बिना विचारे लगभग अंधे होकर नकल कर दी गई है। कोई वैध या बड़ा कारण नही है कि गवर्नर को अपने मंत्रियों के सम्बन्ध में उससे अधिक शक्ति दी जाये जो राष्ट्रपति को अपने मंत्रियों के सम्बन्ध में दी गई है, चाहे वह स्वविवेकाश्रित शक्ति हो या अन्यथा। यदि हम अनुच्छेद 61 को देखें, तो उसमें लिखा है:

> ''राष्ट्रपति को अपने कृत्यों का सम्पादन करने में सहायता और मंत्रणा देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी, जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होगा।''

जब, श्रीमान्, उस दिन आपने एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया था, तब डाक्टर अम्बेडकर ने यह कह कर इस खंड की व्याख्या की थी कि राष्ट्रपति अपने सब कृत्यों के निर्वहन में अपने मंत्रियों की मन्त्रणा मानने के लिए बाध्य है। किन्तु यहां अनुच्छेद 143 से राज्यपाल को कुछ स्वविवेकाश्रित शक्तियां मिल जाती है और मुझे यह प्रतीत होता है कि पहले भी वह बुरा ही था, किन्तु अब राज्यपाल के निर्वाचन सम्बन्धी अनुच्छेद 131 को संशोधित रूप में स्वीकार करने के पश्चात् और मनोनीत राज्यपालों को स्वीकार करने के पश्चात्, यह सिद्धान्ततः गलत होगा और सांविधानिक शासन के सिद्धांतों और नियमों के विरुद्ध होगा, जिनके आधार पर आप इस देश का ढांचा बनाने जा रहे हैं। मैं कहता हूं कि राज्यपाल को यह अतिरिक्त शक्तियां, अर्थात् स्वविवेकाश्रित शक्तियां, देना गलत है। मैं अनुभव करता हूं कि सांविधानिक शासन के सिद्धांतों से जरा भी नहीं हटना चाहिए जब तक कि आपात स्थिति सम्बन्धी कोई कारण न हो और इन स्वविवेकाश्रित शक्तियों को हटा देना चाहिए। मुझे आशा है कि सदन मेरे संशोधन को स्वीकार कर लेगा। श्रीमान्, मैं इसे पेश करता हूं।

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 143 के खंड (1) में, 'head' शब्द के आगे एक अर्धविराम रख दिया जाये तथा 'who shall be responsible to the Governor and shall' ये शब्द रख दिए जायें तथा 'to' शब्द हटा दिया जाये।''

[प्रो. के.टी. शाह]

अत: संशोधित अनुच्छेद ऐसा बन जायेगा:

> "(1) एक मंत्रिपरिषद् होगी जिसका प्रधान मुख्यमंत्री होगा, जो राज्यपाल के प्रति उत्तरदायी होगी और राज्यपाल को उसके कृत्यों के निर्वहन में सहायता तथा मन्त्रणा देगी...आदि।"

श्रीमान्, यह तो संविधान के मस्विदे के इस व्यापक सिद्धान्त का तर्कसंगत निष्कर्ष है कि शासन विधान मंडल के प्रति समस्त मंत्रिमंडल के सामूहिक उत्तरदायित्व के आधार पर चलेगा। साथ ही, मंत्रिमंडल में प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री या उसे कुछ भी नाम दीजिये, मुख्य परामर्शदाता होगा और मैं चाहता हूं कि संविधान द्वारा उत्तरदायित्व मुख्यमंत्री पर ही रहे, अन्य मंत्रियों की यह स्थिति नहीं हो। मंत्रिमंडल के भीतर चाहे कुछ भी कार्यप्रणाली या परम्परा हो, मंत्रिमंडल के निर्णय चाहे किसी प्रकार किये जायें, जहां तक राज्यपाल का संबंध है, मैं समझता हूं कि मुख्यमंत्री का ही उत्तरदायित्व होगा जो कि अपने सहयोगियों की नियुक्ति के विषय में और यदि आवश्यक हो तो उन्हें हटाने के विषय में भी मंत्रणा देगा। यह उचित है कि राज्य के सांविधानिक मुखिया, अर्थात् राज्यपाल, को दी गई मंत्रणा के लिये मुख्यमंत्री को ही सीधा उत्तरदायी ठहरा दिया जाये। क्योंकि यह हमारे द्वारा स्वीकृत सिद्धान्तों का स्पष्ट निष्कर्ष है, अत: मुझे आशा है कि इस संशोधन पर कोई आपत्ति नहीं होगी।

(संशोधन 2159 से 2163 तक पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** कोई अन्य संशोधन नहीं है। अनुच्छेद और संशोधनों पर वाद-विवाद हो सकता है।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** अध्यक्ष महोदय, मुझे भय है कि मुझे मेरे माननीय मित्र श्री कामत के संशोधन का विरोध करना पड़ेगा, केवल इस कारण कि उन्होंने अनुच्छेद के क्षेत्र को स्पष्ट नहीं समझा है और यह संशोधन भ्रान्ति के कारण रखा गया है।

श्रीमान्, नि:संदेह यह सत्य है कि इस अनुच्छेद से कुछ शब्दों को हटाया जा सकता है जो राज्यपाल के उन कृत्यों के निर्वहन के सम्बन्ध में हैं, जिनके विषय में उसे अपने स्वविवेक से कार्य करना होगा, चाहे उसके मंत्री उसे कुछ भी मंत्रणा क्यों न दें। इस अभिप्राय का उल्लेख करने के दो तरीके हैं। एक तो यह है कि इस अपवाद का उल्लेख अनुच्छेद 143 में कर दिया जाये और बाद वाले अनुच्छेदों में राज्यपाल की उन शक्तियों को गिना दिया जाये जिनसे कि वह अपने स्वविवेक से कार्य कर सकता है, या इस शक्ति की यहां कोई चर्चा न की जाये और केवल उपयुक्त अनुच्छेद में उसका उल्लेख

कर दिया जाये। पहले तरीके को अपनाया गया है। यहां व्यापक सिद्धांत की चर्चा कर दी गई है कि गवर्नर को सामान्यत: अपने मंत्रियों की मंत्रणा पर चलना होगा, सिवाय संविधान के उन अनुच्छेदों में आने वाले स्वविवेक के कृत्यों के निर्वहन में जिनमें कि उसे स्वविवेक से कार्य करने की स्पष्टत: शक्ति दी गई है। बाद में संविधान में ऐसे अनुच्छेद दे दिये गये हैं, जिनके विषय में उसे स्वविवेक से कार्य करने के लिये कहा गया है, जिनमें वे सब मामले आ जाते हैं जहां साधारण प्रणाली से हटना पड़ता है, जिन पर मैं देखता हूं कि मेरे माननीय मित्र श्री कामत को कोई आपत्ति नहीं है, मैं अनुच्छेद 188 का हवाला दे सकता हूं, तो मैं इस अनुच्छेद के उपबन्धों को इसी प्रकार रहने देने में कोई हानि नहीं समझता। यदि ऐसा हो कि यह सभा निश्चय कर दे कि बाद वाले सब अनुच्छेदों में स्वविवेक की शक्ति नहीं रखनी चाहिये, जैसा कि सभा कर सकती है, तो यह खंड विशेष निरर्थक हो जायेगा। मेरे माननीय मित्र जो बात सिद्ध करना चाहते हैं वह युक्तिहीन दिखाई देती है, जबकि वे यह मान लेते हैं कि अनुच्छेद 188 के अंतर्गत राज्यपाल को स्वविवेक की शक्ति दी जा सकती है। यदि वह अनुच्छेद 188 में दी जा सकती है, तो उसका यहां उल्लेख करने में कोई हानि नहीं है। इस अपवाद का अनुच्छेद 143 में उल्लेख करने से कोई हानि नहीं हो सकती। अतएव, श्री कामत इस अपवाद के यहां उल्लेख करने में जो गम्भीर आपत्ति देखते हैं वह युक्तिहीन है। इसलिये मेरे विचार में यह अच्छा हो कि यह अनुच्छेद संशोधन के बिना ही स्वीकार कर लिया जाये। यदि सभा के लिये यह आवश्यक है कि राज्यपाल की स्वविवेक की शक्ति को सीमित कर दिया जाये या बिल्कुल हटा दिया जाये, तो ऐसा बाद के अनुच्छेदों में किया जा सकता है जहां विशेष उल्लेख किया गया है जिसके बिना यहां उल्लिखित शक्ति को काम में ही नहीं लिया जा सकता। मैं सभा का ध्यान इसी बात की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं और मेरे ख्याल में अनुच्छेद को विद्यमान रूप में ही पारित कर दिया जाये।

***डा. पी.एस. देशमुख** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, श्री टी. टी. कृष्णमाचारी ने इस अपवाद के विषय में, जो कि अनुच्छेद 143 के खंड (1) में जोड़ा गया है, स्थिति को स्पष्ट कर दिया है। यदि राज्यपाल को, वास्तव में, स्वविवेक की शक्ति देनी है, तो यह अपेक्षित है कि यह खंड, जिसे श्री कामत हटाना चाहते हैं, रहना ही चाहिये।

श्रीमान्, इसके अतिरिक्त मैं नहीं जानता कि मस्विदा-समिति ने इस बात को जानबूझ कर हटा दिया है या इसे बाद में रखना चाहती है कि गवर्नर मंत्रिपरिषद् के अधिवेशनों में सभापतित्व करेगा, मैं डाक्टर अम्बेडकर से पूछना चाहता हूं कि क्या ऐसा उपबन्ध अपेक्षित नहीं है। यहां ऐसा कोई उपबंध दिखाई नहीं देता। यह अनुच्छेद 143 भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 50 की केवल पुनरावृत्ति ही है, जिसमें कि यह उपबंध है कि गवर्नर अपनी इच्छानुसार मंत्रिपरिषदों के अधिवेशनों का सभापतित्व कर सकता है, अतएव

[डा. पी. एस. देशमुख]

मेरे विचार में यह शक्ति अत्यावश्यक है। अन्यथा, मंत्रिगण राज्यपाल को किसी अधिवेशन में आने से रोक सकते हैं और इस शक्ति का उपबंध न किया जाये तो वह राज्यपाल को प्राप्य नहीं होगी। मैं मस्विदा-समिति के सदस्यों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना चाहता हूं और वे देखें कि क्या यह संभव है कि वे अनुच्छेद 143 पर ऐसा संशोधन स्वीकार कर लें या यह किसी अन्य भाग में यह उपबंध रख दें। मेरे विचार में मंत्रिमंडल के अधिवेशनों में सभापतित्व करने की शक्ति राज्यपाल के लिये आवश्यक है और उसका उपबंध होना चाहिये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** अध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद में उपबंधित है:

> ''कि राज्यपाल को अपने कृत्यों का निर्वहन करने में सहायता और मंत्रणा देने के लिए एक मंत्रिपरिषद् होगी जिसका प्रधान मुख्यमंत्री होगा।''

श्रीमान्, मैं सांविधानिक विधिवेत्ता नहीं हूं, किन्तु मैं अनुभव करता हूं कि इस अनुच्छेद के उपबंधों के कारण राज्यपाल अपनी मंत्रिपरिषद् द्वारा दी गई मंत्रणा पर चलने के लिये बाध्य नहीं है। इसका यही आशय है, मंत्रियों को अधिकार है कि वे राज्यपाल को मंत्रणा दे सकें। राज्यपाल को पूरा अधिकार है कि वह उस मंत्रणा को स्वीकार करे या ठुकरा दे। प्रशासन के दूसरे क्षेत्र में राज्यपाल अपने कृत्यों के निर्वहन में अपने स्वविवेक से काम कर सकता है। इस क्षेत्र में मंत्रिमंडल को कोई मंत्रणा देने की शक्ति नहीं है। हां, यह राज्यपाल पर छोड़ दिया गया है कि वह इस क्षेत्र में भी मंत्रियों की मंत्रणा मांग सकता है।

मैं अनुभव करता हूं कि हमने स्थिति के वर्तमान तथ्यों पर विचार नहीं किया है हमने संसार के विभिन्न देशों के संविधानों की नकल करने का प्रयत्न किया है। इस समय यह अपेक्षित है कि राज्यपाल को केवल अपने स्वविवेक से काम करने की ही शक्ति नहीं, वरन् अपने वैयक्तिक विवेक के अनुसार कार्य करने की भी शक्ति मिलनी चाहिये। मेरा ख्याल है कि राज्यपाल को विशेष उत्तरदायित्वों की शक्ति भी मिलनी चाहिये, जो कि इस देश में ब्रिटिश शासन के अधीन गवर्नरों को प्राप्त थी। मेरे विचार में प्रांतों में नेताओं की कमी है। योग्य व्यक्ति उपलब्ध नहीं हैं और विविध प्रांतों में सब प्रकार की बातें होती रहती हैं। जब तक कि राज्यपालों को विस्तृत शक्तियां न दी जायें, तब तक प्रांतीय प्रशासन में कोई सुधार करना कठिन होगा। ऐसी कार्यप्रणाली चाहे लोकतंत्रात्मक न हो, पर देश के हितों में यह पूर्णतः ठीक होगी। मैं लोकतंत्र को, देश के महत्त्वपूर्ण हितों को जोखिम में नहीं डालने दे सकता। मैं अनुभव करता हूं कि इस देश के मध्य श्रेणी वाले बुद्धिजीवियों में सृजन की शक्ति शेष नहीं रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे पहल करने और उद्योग करने के योग्य नहीं रहे हैं। जनसाधारण जो कि इस देश के शासक

होने चाहियें, पददलित हैं और सब प्रकार से शोषित हैं। इन परिस्थितियों में कोई तरीका शेष नहीं है सिवाय इसके कि भारत सरकार प्रांतीय प्रशासन को अपने ही हाथों में ले ले। मेरा ख्याल है कि हम इस देश में क्रांति के द्वार पर खड़े हैं। मैं इस स्थिति में अनुभव करता हूं कि यह अपेक्षित है कि समस्त शक्तियां भारत सरकार के हाथ में केन्द्रित रहनी चाहियें। कुछ प्रांतों में तो विधि और शांति की व्यवस्था सर्वथा टूट ही गई प्रतीत होती है। डाके, अग्निकांड, लूट, हत्या और मुद्रास्फीति का ही बोलबाला है। मैं इस अनुच्छेद के विरुद्ध हूं क्योंकि मुझे विश्वास है कि संघवाद ऐसे देश में सफल नहीं हो सकता जो कि परिवर्तन काल में से गुजर रहा हो। अमरीका की राष्ट्रीय अर्थस्थिति पूर्णत: विकसित है। वहां संघीय प्रकार की सरकार चल सकती है जिस देश में विस्तार की और आर्थिक विकास की गुंजाइश न हो वहां केन्द्रित अर्थव्यवस्था की आवश्यकता नहीं है। भारत में जहां हमारी कृषि, उद्योग, खनिज उत्पादन आदि विकास की शैशवावस्था में हैं, यह आवश्यक है कि भारत सरकार के हाथ में शक्तियां निहित हों। संघवाद का उन्नीसवी शताब्दी में प्रचार था जब कि संचार के साधन अविकसित थे। प्राचीनकाल में पारिभाषिक ज्ञान तथा सरकारों को उपलब्ध साधन बहुत कम थे। आज परिस्थिति सर्वथा बदल गई है। संचार साधन द्रुतगति से विकसित हो गये हैं। भारत सरकार के पास पारिभाषिक ज्ञान तथा अपेक्षित व्यक्तियों का इतना भंडार है कि वह आधुनिक सरकारों से प्रत्याशित समस्य कृत्यों का निर्वहन कर सकता है। यह भी एक कारण है कि मैं इस अनुच्छेद के विरुद्ध हूं। इस देश में संघवाद के लिये कोई गुंजाइश नहीं है। सारी सरकारें लगभग एकात्मक प्रकार की ही हो गई हैं यदि हमें सब मोर्चों पर राजनैतिक उथल-पुथल, आर्थिक उलझनों तथा सैनिक पराजयों से बचना है, तो हमारे नेताओं और राजनीतिज्ञों को रूढ़ि-विरुद्ध तरीके से सोचना सीख लेना चाहिये; अन्यथा इस देश का भविष्य अन्धकारमय है।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रांत : जनरल): अध्यक्ष, महोदय मैं डाक्टर अम्बेडकर से पूछना चाहता हूं कि क्या यह अपेक्षित है कि 'that the Governor will be aided and advised by his Ministers' शब्दों के पश्चात् 'except in regard to certain matters in respect of which he is to exercise his discretion' ये शब्द रखे जायें। मान लीजिये कि ये शब्द, जो कि पुराने भारत शासन अधिनियम और पुरानी व्यवस्था के प्रतीक हैं हटा दिये जाते हैं तो क्या हानि है? मंत्रियों के कृत्य विधि रूपेण राज्यपाल को सहायता और मंत्रणा देना है। जिस अनुच्छेद में ये शब्द हैं उसमें यह नहीं लिखा है कि राज्यपाल मंत्रियों की मंत्रणा पर चलेगा किन्तु यह आशा की जाती है कि समस्त देशों में, जहां कि उत्तरदायी सरकार है, जो सांविधानिक परम्परा है उसके अनुसार, राज्यपाल सब मामलों में अपने मंत्रियों की मंत्रणा स्वीकार करेगा। किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि कानून में स्पष्ट लिखा है कि कुछ उल्लिखित मामलों में वह अपने ही प्राधिकार से कार्यवाही कर सकता है, अत: अनुच्छेद 143 उसके मार्ग में रोड़ा बन जायेगा।

[पं. हृदयनाथ कुंजरू]

मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने कहा है कि संविधान के अनुच्छेद 188 से राज्यपाल को यह शक्ति मिल जाती है कि वह मंत्रियों की मंत्रणा की अवहेलना कर दे और प्रांत के प्रशासन को अपने हाथ में ले ले, अतः यह आवश्यक है कि इन शब्दों को रहने दिया जाये, अर्थात् राज्यपाल को स्वविवेक की शक्ति रहने दी जाये। किन्तु वे हमें आश्वासन देते हैं कि यदि बाद में धारा 188 को हटा दिया जायेगा तो अनुच्छेद 143 के शब्दों पर पुनः विचार हो सकेगा। मैं इस स्थिति को पूर्णतया समझता हूं तथा इसे अच्छा समझता हूं, किन्तु फिर भी मैं चाहता हूं कि जिन शब्दों पर मेरे मित्र श्री कामत ने आपत्ति की है, उन्हें हटा दिया जाये। मेरा वैयक्तिक रूप में यह ख्याल है कि यदि इसे न रखा जाये तो कोई हानि नहीं होगी और फिर हम अनुच्छेद 188 पर ही नहीं, साथ ही अनुच्छेद 175 पर भी उनके गुणावगुण के अनुसार विचार कर सकते हैं; किन्तु श्री कृष्णमाचारी के आश्वासन के बावजूद भी आपत्ति किये गये शब्दों को रहने देने से यह ख्याल पैदा नहीं होता कि मस्विदा-समिति सदन से ऐसे सिद्धांतों पर वचनबद्ध होने के लिये कह रही है, जिन्हें बाद में स्वीकार करना अवांछित समझा जा सके। मैं अनुच्छेद 188 के गुणावगुण के विषय में कुछ नहीं कहूंगा। इसके विषय में मैं पहले ही अपने विचार संक्षेपतः अभिव्यक्त कर चुका हूं और इस पर बाद में पूरी तरह विचार करने का अवसर मिलेगा जबकि इस अनुच्छेद पर सदन विचार करेगा। किन्तु आरंभ में ही हम ऐसी शब्दावली का क्यों प्रयोग करें, जो पुरानी व्यवस्था की असुखद स्मृति है और जो हमें यह ख्याल दिलाती है कि यह समस्त व्यावहारिक प्रयोजनों के लिये निश्चित तथ्य समझा जा सकता है, यद्यपि यह बाद में संभव हो सकता है कि सदन अब किये हुए विनिश्चय को बदल सके? श्रीमान्, मेरे विचार में इन कारणों से मेरे माननीय मित्र श्री कामत के संशोधन को स्वीकार करना तथा बाद में अनुच्छेद 175 तथा 188 पर उनके गुणावगुण के अनुसार विचार कर लेना अच्छा होगा।

समाप्त करने से पहले मैं एक बात और कहना चाहता हूं। यदि अनुच्छेद 143 को वर्तमान स्थिति में पारित कर दिया जाये, तो उससे इस प्रकार की भ्रांतियां उत्पन्न हो सकती हैं जिस प्रकार की मेरे माननीय मित्र डाक्टर देशमुख के हृदय में प्रतीत होती है, जबकि उन्होंने यह मांग की है कि एक उपबंध रख देना चाहिये जिससे राज्यपाल को मंत्रिपरिषद् के अधिवेशनों में सभापतित्व करने का अधिकार मिल जाये। संविधान के मस्विदे में इसका उपबंध नहीं रखा गया है और मेरे विचार में यही ठीक है। ग्रेट ब्रिटेन और ब्रिटिश अधिराज्यों में उत्तरदायी शासन की जो परम्परा स्थापित हो गई है, यह उसके विरुद्ध होगा कि राज्यपाल या गवर्नर जनरल साधिकार अपने मंत्रिमंडल के अधिवेशनों में सभापतित्व करे। संविधान के मस्विदे में केवल इतना ही किया गया है कि मुख्यमंत्री का यह कर्त्तव्य निश्चित कर दिया गया है कि वह प्रशासनीय मामलों और सरकार के विधान कार्यक्रम के विषय में मंत्रिपरिषदों के विनिश्चयों से राज्यपाल को अवगत करे। इसके बावजूद हम देखते हैं कि अनुच्छेद 143 की विद्यमान भाषा से डाक्टर देशमुख जैसे व्यक्ति के मन में भी भ्रांति हो गई है जो संविधान के प्रत्येक अनुच्छेद को पूरे ध्यान से पढ़ने का

कष्ट करते हैं। यह भी एक कारण है कि राज्यपाल की स्वविवेक की शक्ति की चर्चा अनुच्छेद 143 में नहीं होनी चाहिये। मेरे मित्र श्री कृष्णमाचारी की वक्तृता से यह आशा उत्पन्न नहीं होती कि मैंने जो सुझाव दिया है उसके स्वीकार होने की कोई आशा हो। फिर भी मैं यह कहना अपना कर्त्तव्य समझता हूं कि श्री कामत ने जो तरीका बताया है वह उससे अच्छा है जो मस्विदा उप-समिति स्वीकार करती है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रांत : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैंने अपने माननीय मित्र श्री कृष्णमाचारी की वक्तृता को और श्री कामत जो शब्द निकालना चाहते हैं उन्हें बनाये रखने के पक्ष में उनकी युक्तियों को बहुत ध्यानपूर्वक सुना है। यदि राज्यपाल निर्वाचित राज्यपाल होता, तो मैं समझ लेता कि उसे ये स्वविवेक की शक्तियां मिलनी चाहियें, किन्तु अब हमारे यहां मनोनीत राज्यपाल होंगे जो राष्ट्रपति के प्रसादकाल तक पदधारण करेंगे और मैं नहीं समझता कि ऐसे व्यक्तियों को धारा 188 में उल्लिखित शक्तियां दी जानी चाहियें।

फिर, यदि अनुच्छेद 188 पर विचार होना है—और वह अस्वीकृत भी हो सकता है—तो यह उचित नहीं है कि ये शक्तियां इस अनुच्छेद में पहले ही दे दी जायें। यदि अनुच्छेद 188 पारित हो जायेगा तो हम इस अनुच्छेद पर पुनः विचार कर सकते हैं और अपेक्षित हो तो यह खंड जोड़ सकते हैं। सभा में राज्यपाल की शक्तियों के विषय में जो कुछ कहा जा चुका है उसे देखते हुए हमें यह पूर्व धारणा नहीं बना लेनी चाहिये कि हम अनुच्छेद 188 को पारित कर ही देंगे।

ये शब्द अपमानजनक विगत काल की स्मृति हैं। मुझे भय है कि यदि इन शब्दों को रहने दिया गया तो कोई राज्यपाल पिछले गवर्नरों की नकल करने का प्रयत्न कर सकता है और उनका दृष्टान्त दे सकता है, कि अमुक अवसर पर गवर्नर ने अपने स्वविवेक से कार्य किया था। मेरा ख्याल है कि हमारे संविधान में, जो कि हम बना रहे हैं, राज्यपाल की यह शक्तियां ठीक नहीं बैठती और श्री कामत ने जो संशोधन पेश किया है उसकी सूचना माननीय गोविन्दवल्लभ पन्त जैसे महान् व्यक्ति ने भी दी है। मेरे विचार में पंडित पन्त की बुद्धिमानी इस बात की पर्याप्त प्रतिभूति होनी चाहिये कि यह संशोधन स्वीकृत हो जाना चाहिये। यह भी संभव हो सकता है कि सभा अनुच्छेद 188 को पारित ही न करे। यदि कोई आपात हो, तो प्रान्त का प्रमुख मंत्री स्वयं आकर राज्यपाल से प्रार्थना करेगा कि आपात की घोषणा कर दी जाये और उसके निराकरण के लिये केन्द्र की सहायता प्राप्त की जानी चाहिये। राज्यपाल प्रांत के प्रमुख मंत्री से पूछे बिना आपात की घोषणा क्यों करे? हमें देखना चाहिये कि मुख्यमंत्री और प्रांत का राज्यपाल ऐसे अवसर पर एक दूसरे से विरोध-भाव न रखें। ऐसी स्थिति आने नहीं देनी चाहिये जबकि मुख्यमंत्री कहें कि वह शासन चलाना चाहता है और राज्यपाल उससे बिना पूछे और उसके विरोध प्रदर्शन के बावजूद भी आपात की घोषणा कर दे।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

इससे मुख्यमंत्री नितांत शक्तिहीन हो जायेगा। मेरे विचार में कोई कुटिल राज्यपाल प्रांत में चाहे तो ऐसी स्थिति पैदा कर सकता है या राष्ट्रपति के कहने पर भी कर सकता है यदि उस प्रांत में ऐसा दल सत्तारूढ़ हो जो केन्द्र में सत्तारूढ़ दल से विरुद्ध हो। मेरे विचार में अनुच्छेद 188 को, यदि रखा भी जाये तो, ऐसे प्रकार से संशोधित कर देना चाहिये कि राज्यपाल, प्रांत के मुख्यमंत्री की ही मंत्रणा पर आपात की घोषणा करे। मैं डाक्टर अम्बेडकर को सुझाव देता हूं कि ये शब्द इस अनुच्छेद में नहीं होने चाहियें और उसके परिणामत: संशोधन के रूप में, इस अनुच्छेद की उपधारा (2) को हटा देना चाहिये।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, मैं अपने माननीय उग्रवादी मित्रों श्री कामत और प्रोफेसर शिब्बनलाल सक्सेना से सविनय असहमत हूं और मेरे विचार में प्रांतों को जितनी अधिक शक्ति दी जाये, उतना ही उन शक्तियों के प्रयोग में केन्द्र का संरक्षण और नियंत्रण कठोर होना चाहिये। मेरा तो यही ख्याल है। अब हमने स्वशासित राज्यों के निर्माण के पुराने विचार को छोड़ दिया है और अब हम केन्द्र में शक्तियों का संग्रह रख रहे हैं और हम मनोनीत राज्यपाल रखने वाले हैं। वे राज्यपाल व्यर्थ ही तो नहीं होंगे। आखिर, हमें यह देखना है कि केन्द्र की नीति सफल हो। हम राज्यों को साथ-साथ मिला कर रखना चाहते हैं और राज्यपाल एक अभिकर्ता या वह एक साधन होगा जो कि केन्द्रीय नीति के लिये जोर डालेगा और उसका अभिरक्षण करेगा। वास्तव में हमारी पुरानी विचारधारा अब सर्वथा बदल गई है। देश की समस्त राजनीति पर केन्द्र की नीति का प्रभाव और असर पड़ता है। उदाहरणार्थ प्रतिरक्षा जैसे विषय लीजिये जिनमें शांति या युद्ध, विदेशों से संबंध समाविष्ट हैं; हमारे वाणिज्यिक सम्बन्धों को लीजिये, जिनमें आयात और निर्यात समाविष्ट हैं ये ऐसे विषय हैं जिनका समस्त राजनीति पर प्रभाव पड़ता है और प्रांत अप्रभावित नहीं रह सकते, वे केन्द्र की नीति से स्वतंत्र नहीं रखे जा सकते। केन्द्र में जो नीति निर्धारित होगी उसका सब राज्यों को अनुसरण करना चाहिये और यदि राज्यपाल प्रान्तीय मंत्रिमंडलों के हाथ में हों तो विविध प्रान्तों में विविध नीतियां होंगी और प्रत्येक प्रांत की नीति ऐसी ही अस्थायी होगी जैसा कि वहां का मंत्रिमंडल होगा। क्योंकि कई प्रकार के मंत्रिमंडल होंगे जिनके विभिन्न दलीय नाम होंगे और वे भिन्न-भिन्न कार्यक्रमों पर चलेगे, उनकी नीतियां एक-दूसरे से अवश्य भिन्न होंगी; अतएव यह और भी अत्यावश्यक है कि राज्यों और केन्द्र के बीच कार्यक्रमों और नीतियों का तालमेल हो। राज्यपाल केन्द्र का अभिकर्ता होने के कारण एकमात्र प्रत्याभूति है जो विभिन्न प्रांतों और राज्यों का एकीकरण करेगा। केन्द्रीय सरकार भी प्रांतीय सरकारों के द्वारा अपनी अभिव्यक्ति करेगी; अपने प्रशासन के अतिरिक्त उन्हें केन्द्रीय सरकार की ओर से भी कार्यों का निर्वहन करना होगा। राज्यपाल केन्द्र के अभिकर्त्ता के रूप में कार्य करेगा और ध्यान देगा कि केन्द्रीय नीति पर सच्चाई से आचरण हो। अतएव राज्यपाल की स्वविवेक की शक्तियों को कम नहीं करना चाहिये।

लोकतंत्रात्मक रुचि वन्य पशु के समान होती है। आप चाहे जो कहें, लोकतंत्र दलों और जनसाधारण के भ्रमों और भ्रान्तियों पर चलता है। कोई ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये जो इस वन्य पशु को नियंत्रण में रख सके। मैं लोकतंत्र की निन्दा नहीं करता। लोकतंत्र को अपने मार्ग पर चलने देना चाहिये। पर इसका पतन होकर अराजकता नहीं आनी चाहिये। इसके अतिरिक्त कदाचित् राज्य-सरकारें अपनी नीतियों पर दृढ़ न हों। सरकारें मासों या वर्षों के पश्चात् बदल सकती हैं और उनके साथ उनकी नीतियां भी बदल सकती हैं। राज्यपाल भी बदल सकते हैं किन्तु उन्हें केन्द्र द्वारा दिये गये निर्देश तथा नीतियां लगभग अपरिवर्तित रहेंगी। राज्यों को जितनी अधिक शक्तियां दी जायें उतना ही अधिक कड़ा नियंत्रण होना चाहिये। एक ओर राज्यपाल को केन्द्रीय नीति का और दूसरी ओर उसे संविधान का संरक्षक होना चाहिये। अतएव उसकी शक्तियों को ज्यों की त्यों रहने देना चाहिये।

***श्री बी.एस. गुप्ते** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मेरे विचार में मेरे माननीय मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने जो व्याख्या की है उसे सभा को स्वीकार कर लेना चाहिये और राज्य के स्वविवेक सम्बन्धी शब्दों को रहने देना चाहिये जब तक कि हम अनुच्छेद 175 और 188 को पारित न कर दें।

माननीय डाक्टर देशमुख ने मंत्रिमंडल के अधिवेशनों में राज्यपाल द्वारा सभापतित्व करने के सम्बन्ध में जो सुझाव रखा है, मुझे उसका विरोध करना है। उन्होंने पूछा है कि क्या मस्विदा समिति बाद में ऐसा उपबंध रखना चाहती है। मैं नहीं जानता कि मस्विदा समिति का भविष्य के लिये क्या विचार है किन्तु जहां तक हमारे समक्ष प्रस्तुत मस्विदे का सम्बन्ध है, मेरे विचार में मस्विदा समिति ने इस बात को निश्चय ही ठुकरा दिया है।

मैं माननीय सदन का ध्यान अनुच्छेद 147 की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं जिसके अंतर्गत राज्यपाल को केवल सूचना मात्र का अधिकार है। यदि हम उसे मंत्रिमंडल के अधिवेशनों पर सभापतित्व करने देते हैं तो हम उस स्थिति से हट जायेंगे जो हम उसे देना चाहते हैं, अर्थात् वह सांविधानिक मुखिया नहीं रहेगा। यदि वह मंत्रिमंडल के अधिवेशनों में सभापति होगा तो सब प्रशासनीय क्षेत्रों में मंत्रिमंडल के विनिश्चयों को निश्चित करने में उसकी प्रभावशाली आवाज होगी, चाहे वे क्षेत्र ऐसे हों जो कि उसकी स्वविवेक की शक्ति के लिये रक्षित न हो। यदि उसे कुछ शक्तियां दी जाती हैं, तो हमारा प्रयत्न होना चाहिये कि उन्हें यथासम्भव कम करें, जिससे कि सांविधानिक मुखिया के नाते राज्यपाल की स्थिति बनी रहे। अतः श्रीमान्, मैं डा. देशमुख के प्रस्ताव का विरोध करता हूं।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, वास्तव में संशोधन का विरोध करने वालों और समर्थन करने वालों में कोई अंतर नहीं है। सर्वप्रथम

[श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर]

अनुच्छेद 143 में व्यापक सिद्धांत, मंत्रिमंडलीय उत्तरदायित्व का सिद्धांत, रखा गया है कि राज्यपाल को कार्यपालिका कार्यवाही के विविध क्षेत्रों में अपने मंत्रियों की मंत्रणा पर चलना चाहिये। फिर अनुच्छेद में उपबंधित है कि ''except in so far as he is by or under this Constitution required to exercise his functions or any of them is his discretion.'' [जिन बातों में इस संविधान द्वारा या इसके अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने कृत्यों या उनमें से किसी को स्वविवेक से करे, उन बातों को छोड़ कर] जब तक इस संविधान में ऐसे अनुच्छेद हैं जिनसे कि राज्यपाल को स्वविवेक से कार्य करने की सामर्थ्य होती है और कुछ स्थितियों में, शायद, मंत्रिमंडल की बात की अवहेलना करने या राष्ट्रपति के पास मामला भेज देने की क्षमता प्राप्त होती है, तब तक यह अनुच्छेद विद्यमान रूप में सर्वथा उचित है। यदि बाद में सदन इस निष्कर्ष पर पहुंच जाये कि जिन अनुच्छेदों से राज्यपाल के विशिष्ट मामलों में स्वविवेक से कार्य करने की सामर्थ्य प्राप्त है, उन्हें हटा दिया जाये, तो इस अनुच्छेद में भी संशोधन किया जा सकता है किन्तु जब तक अनुवर्ती अनुच्छेद हैं जिनसे कि राज्यपाल को स्वविवेक से कार्य करने और मंत्रिमंडल के उत्तरदायित्व पर कार्य न करने की अनुमति प्राप्त है, तब तक यह अनुच्छेद, अपने विद्यमान रूप में, सर्वथा उचित है।

दूसरा यही प्रश्न है कि क्या पहले अनुच्छेद 143 में यह उपबंध कर दिया जाये कि राज्यपाल मंत्रिमंडल के उत्तरदायित्व पर कार्य करेगा और बाद में यह उपबंध रख दिया जाये कि ''अनुच्छेद 143 में किसी बात के होते हुए भी...वह ऐसा कर सकता है'' अथवा ''अनुच्छेद 143 में किसी बात के होते हुए भी वह अपने स्वविवेक से कार्य कर सकता है।'' मेरे विचार में यह अधिक अच्छा उपाय है कि अनुच्छेद 143 में ऐसा उपबंध रखा जाये कि राज्यपाल सदा मंत्रिमंडल के उत्तरदायित्व पर कार्य करेगा, सिवाय विशेष अथवा विशिष्ट मामलों में जहां कि उसे अपने स्वविवेक से कार्य करने की शक्ति है। हां, यदि सदन इस निष्कर्ष पर पहुंच जाये कि राज्यपाल किसी मामले में अपने स्वविवेक से कार्य नहीं करेगा और वह हर मामले में केवल मंत्रिमंडल के उत्तरदायित्व पर ही कार्य करेगा, तो इस अनुच्छेद में परिणामतः परिवर्तन हो जायेगा। अर्थात् उन अनुच्छेदों पर विचार होने और उनके पारित हो जाने के पश्चात् सदन को पूरा अधिकार होगा कि वह अनुच्छेद 143 के अनुवर्ती भाग को हटा दे, जो कि बाद के अनुच्छेदों पर सदन द्वारा किये गये विनिश्चय के फलस्वरूप होगा। किन्तु इस समय यह बिल्कुल ठीक है और मैं नहीं समझता कि अनुच्छेद 143 की भाषा में कोई परिवर्तन अपेक्षित है। प्रत्येक अनुच्छेद के आरंभ में यह कहना भी भारी होगा कि ''अनुच्छेद 143 में किसी बात के होते हुए भी राज्यपाल अपने उत्तरदायित्व पर कार्य कर सकता है।''

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, एक स्पष्टीकरण करवाना चाहता हूं। श्रीमान्, क्या मैं जान सकता हूं कि जब आपात की शक्तियां राज्यपाल के समान राष्ट्रपति को भी दी गई

है, शायद अधिक दी गई हैं, तब स्वविवेक की शक्तियां केवल राज्यपालों को ही क्यों दी गई हैं, राष्ट्रपति को क्यों नहीं दी गई?

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): श्रीमान्, मैं श्री कामत के संशोधन का विरोध करना चाहता हूं। अनुच्छेद 143 के अंतर्गत मंत्रिपरिषद् राज्यपाल के कर्त्तव्यों के प्रयोग में उसकी सहायता करेगी। यहां तक बात स्पष्ट है। मैंने एक संशोधन की सूचना दी थी जो कार्यावधि में संख्या 142-ए है और मैंने उसे पेश नहीं किया है। उस संशोधन में मैंने सुझाव दिया है कि राज्यपाल सब मामलों में अपने मंत्रियों की मंत्रणा मानने पर बाध्य होगा, सिवाय उन मामलों के जिनके विषय में उसके लिये इस संविधान के अधीन अपने स्वविवेक से कार्य करना अपेक्षित है। मेरा निवेदन है कि यह कहना गलत है कि राज्यपाल एक मूक व्यक्ति होगा। वास्तव में मेरे मतानुसार राज्यपाल बहुत विस्तृत शक्तियों का और बहुत महत्त्वपूर्ण शक्तियों का प्रयोग करेगा। यदि हम अनुच्छेद 144 को देखें तो उसमें लिखा है:

> ''राज्यपाल के मंत्री उसके द्वारा नियुक्त होंगे और उसके प्रसादकाल पर्यन्त अपने पद धारण करेंगे।''

अत: उसे अपने मंत्री नियुक्त करने की शक्ति है। किन्तु जब मंत्री हों ही नहीं तब उसे अपने कृत्यों के निर्वहन में कौन मंत्रणा देगा? जब वह अपने मंत्रिमंडल को पदच्युत कर देगा, जब भी वह अपने कृत्यों को अपने स्वविवेक से ही करेगा।

फिर भी, यदि पिछले मंत्रिमंडल के विघटन के पश्चात्, राज्यपाल किसी दल के नेता को मंत्रियों के चुनने के लिये बुलायेगा, उस अवस्था में, कोई मंत्रिमंडल अस्तित्व में नहीं होगा; फिर उसे मंत्रणा देने के लिये कौन होगा? अतएव वह स्वविवेक से ही अपने कृत्यों का निर्वहन करेगा।

यह ख्याल करना गलत है कि राज्यपाल पर ऐसे कर्त्तव्यों का भार नहीं होगा जिन्हें वह स्वविवेक से पूरा करेगा। अनुच्छेद 175 और 188 दूसरे अनुच्छेद हैं जिनसे उसे स्वविवेक वे प्रयोग के लिये अन्य कर्त्तव्य मिलते हैं।

अनुच्छेद 144 (4) के अंतर्गत निदेश-पत्र का उल्लेख है, जो चतुर्थ अनुसूची में दिया हुआ है। उसकी अंतिम कंडिका इस प्रकार है:

> ''अच्छे प्रशासन के स्तरों के संधारण के हेतु, आचारिक, सामाजिक और अधिक कल्याण के पोषण करने वाले और जनता के समस्त वर्गों को सार्वजनिक जीवन तथा राज्य के शासन में यथोचित भाग लेने के लिये योग्य बनाने वाले समस्त उपायों की वृद्धि के हेतु और समस्त वर्गों और पंथों में सहकारिता सद्भाव और धार्मिक विश्वासों और भावनाओं के प्रति परस्पर आदर उत्पन्न करने के हेतु राज्यपाल भरसक उद्योग करेगा।''

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

मेरा निवेदन है कि मेरे मतानुसार राज्यपाल मंत्रिमंडल और सामान्यत: जनता का पथ-प्रदर्शक, दर्शक और मित्र होगा, जिससे कि वह कुछ कृत्यों का प्रयोग करेगा जिनमें से कुछ अलिखित परंपरा के रूप में होंगे और कुछ ऐसे होंगे जो संविधान द्वारा लिखित रूप में प्रदत्त होंगे। वह ऐसा व्यक्ति होगा जो दल से परे होगा और वह मंत्रिमंडल और सरकार को निरपेक्ष दृष्टिकोण से देखेगा। वह मंत्रियों और विधान मंडल के सदस्यों पर ऐसे प्रकार से प्रभाव डालेगा कि प्रशासन सहज ही चलेगा। वास्तव में यह कहना, कि उसके जैसा व्यक्ति केवल मूक व्यक्ति ही होगा या शक्तिहीन सम्मानित अधिकारी होगा, गलत है। यह बिल्कुल ठीक है कि जहां तक सांविधानिक राज्यपाल का प्रश्न है उसे कई मामलों में मंत्रियों की मंत्रणा लेनी होगी, किन्तु कई ऐसे मामले हैं जिनमें न वह मंत्रणा प्राप्य ही होगी और न वह उसे स्वीकार करने के लिये बाध्य ही होगा।

अनुच्छेद 147 के अधीन राज्यपाल को सूचना मांगने की शक्ति है और भाग (ग) में लिखा है: मुख्यमंत्री का कर्त्तव्य होगा:

> ''किसी विषय को, जिस पर मंत्री ने विनिश्चिय कर दिया हो किन्तु मंत्रिपरिषद् ने विचार नहीं किया हो, राज्यपाल के अपेक्षा करने पर परिषद् के सम्मुख विचारार्थ रखना।''

यह विशेष रूप से ऐसा मामला है कि जो बहुत महत्त्वपूर्ण है। राज्यपाल को अधिकार है कि वह मुख्यमंत्री को ऐसा कोई मामला मंत्रिपरिषद् में रखने के लिये कहे जिस पर किसी मंत्री ने विनिश्चय कर दिया हो। जब वह सूचना मांगेगा तब वह अपने स्वविवेक के प्रयोग से कार्यवाही करेगा। वह किसी प्रकार की सूचना मांग सकता है। इस शक्ति के द्वारा वह मंत्रिमंडल को अनुत्तरदायी कार्य करने से रोक सकता है और उस पर नियंत्रण रख सकता है। मेरे विचार में, वर्तमान संविधान में राज्यपाल की जो स्थिति रखी गई है उससे वह बहुत महत्त्वपूर्ण कृत्यों का प्रयोग करेगा और इसलिये अनुच्छेद 143 में उसके स्वविवेक संबंधी शब्दों को बनाये रखना बहुत अपेक्षित है।

***श्री एच.वी. पातस्कर** (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, अनुच्छेद 143 नितांत स्पष्ट है। मेरे माननीय मित्र श्री कामत के संशोधन के विषय में कई बातें उठाई गई हैं, कि क्या राज्यपाल केवल नाममात्र का ही होगा, क्या वह सांविधानिक मुखिया ही होगा अथवा उसे स्वविवेक की शक्तियां प्राप्त होंगी। मेरे ख्याल में इस प्रश्न पर बिल्कुल भिन्न दृष्टिकोण से विचार करना होगा। अनुच्छेद 143 मंत्रियों के कृत्यों के संबंध में ही है। वह मुख्यत: राज्यपाल की शक्तियों और कृत्यों के सम्बन्ध में नहीं है। उसमें केवल लिखा है:

> ''राज्यपाल को अपने कृत्यों का निर्वहन करने में सहायता तथा मंत्रणा देने के लिये एक मंत्रिपरिषद् होगी जिसका प्रधान मुख्यमंत्री होगा।''

यदि यह मान लिया जाये कि हम वहीं ठहर जाते हैं, तो क्या यह सम्भावित है कि कई उलझनें उठेंगी या इससे उन स्वविवेक की शक्तियों में हस्तक्षेप होगा जो राज्यपाल को देने का विचार है? मेरे विचार में अनुच्छेद 188 संभवत: अपेक्षित है और मैं यह

सुझाव नहीं देना चाहता कि राज्यपाल को आपात में कार्य करने की जो शक्ति अनुच्छेद 188 में दी गई है वह नहीं होनी चाहिये। मेरा कहना यह है कि यदि यह उपबंध, ''उन बातों को छोड़कर, जिन बातों में इस संविधान द्वारा या इसके अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने कृत्यों अथवा इनमें से किन्ही के पालन में स्वविवेक का प्रयोग करेगा'' नहीं रहे, तो क्या इससे उन शक्तियों पर प्रभाव पड़ेगा जो उसे अनुच्छेद 188 के अधीन स्वविवेक द्वारा काम करने के विषय में दी जायेंगी? मैंने अपने माननीय मित्र और आदरणीय सांविधानिक विधिवेत्ता श्री अल्लादी कृष्णास्वामी की वक्तृता को ध्यान से सुना है किन्तु मैं यह नहीं समझ पाया कि इन प्रकार का उपबंध क्यों अपेक्षित है। उन्होंने कहा कि इसके स्थान पर हमें बाद में, अनुच्छेद 188 पर विचार करते समय कहना पड़ेगा ''अनुच्छेद 143 में किसी बात के होते हुए भी''। पहली बात तो यह है कि मेरे ख्याल में यह अपेक्षित नहीं है। दूसरी बात यह है कि, यदि यह मान भी लिया जाये कि बाद में अनुच्छेद 188 में यह उपबंध रखना अपेक्षित होगा कि 'अनुच्छेद 143 में किसी बात के होते हुए भी', तो भी इन शब्दों को यहां रखना आपत्तिजनक है और इससे कुछ लोगों को कुछ लोगों के विरुद्ध एक प्रकार का अनावश्यक और अनापेक्षित वैमनस्य पैदा करने का अवसर मिल जायेगा। अनुच्छेद 143 में मुख्यत: मंत्रियों के कृत्यों की चर्चा है। इस समय मंत्रियों को राज्यपाल की शक्तियों और उसके प्रकार्यों का स्मरण क्यों कराया जाये और यह क्यों कहा जाये कि जहां राज्यपाल के लिये अपने स्वविवेक से कार्य करना अपेक्षित है वहां मंत्रिगण उसे सहायता या मंत्रणा नहीं देंगे? इस अनुच्छेद में तो मुख्यमंत्री की शक्तियां और प्रकार्य परिभाषित करनी हैं। इसके साथ यह सुझाव देना मानो शिष्टाचार और विनम्रता के अभाव का आभास कराता है। अतएव मेरे विचार में इस प्रश्न पर उस तरह विचार करना चाहिये। प्रश्न यह नहीं है कि हम राज्यपालों को स्वविवेक की शक्तियां देंगे या नहीं, प्रश्न यह नहीं है कि वह केवल नाममात्र का होगा या नहीं। इन प्रश्नों पर तो उचित समय तथा स्थान पर बहस होगी। जब हम अनुच्छेद 143 पर विचार कर रहे हैं जिसमें कि मुख्यमंत्री के प्रकार्यों को परिभाषित किया गया है, तब उसी अनुच्छेद में यह कहना असंगत और अनावश्यक है कि ''जिन बातों में इस संविधान द्वारा अथवा इसके अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपने प्रकार्यों अथवा उनमें से किसी के पालन में स्वविवेक का प्रयोग करेगा, उन बातों को छोड़ कर...।'' यद्यपि मैं इस बात को पूर्णत: मानता हूं कि अनुच्छेद 188 सर्वथा आवश्यक है, फिर भी मेरा सुझाव है कि इस अनुच्छेद 143 में ये शब्द नितांत अनावश्यक हैं और वहां नहीं रखने चाहिये। क्रियात्मक दृष्टिकोण से देखा जाये तो यह उपबंध इस स्थान पर उचित नहीं है और शिष्टाचार युक्त नहीं है, न युक्तियुक्त ही है और प्रसंगानुसार ही है। अतएव मेरा सुझाव

[श्री एच.वी. पातस्कर]

है कि इन शब्दों को हटा देने से कोई हानि नहीं है। मैं नहीं जानता कि मेरा सुझाव स्वीकार्य हो, या नहीं किन्तु मेरे विचार में उच्चतर दृष्टिकोण से यह विचार करने योग्य है।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा** (संयुक्तप्रांत : जनरल): श्रीमान्, स्थिति यह है कि अनुच्छेद 41 के अंतर्गत संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी और वह इसका प्रयोग, संविधान तथा विधि के अनुसार कर सकेगा। अब, संघ का राष्ट्रपति विधि तथा व्यवस्था के बनाये रखने और सुशासन के लिये उत्तरदायी होगा। राज्य का मंत्रिमंडल विधान मंडल में बहुमत के द्वारा जनता के प्रति उत्तरदायी है। अब राष्ट्रपति और राज्य के मध्य सम्बन्ध जोड़ने वाली कौन सी शृंखला है? वह शृंखला राज्यपाल है। अतएव, राष्ट्रपति केवल राज्यपाल के द्वारा ही देश के सुशासन के कृत्यों का निर्वहन कर सकता है। असाधारण स्थिति में राज्यपाल ही अनुच्छेद 188 के अंतर्गत आपात की शक्तियों की शरण ले सकता है। अत: अनुच्छेद 143 के अंतर्गत अपने स्वविवेक से कार्य करने की शक्ति उसमें होनी ही चाहिये और अनुच्छेद 188 अपेक्षित है और हटाया नहीं जा सकता। इसलिये अनुच्छेद 188 में रखी गई आपात की शक्तियां किसी न किसी रूप में अपेक्षित है जिससे कि राज्यपाल राज्य में विधि व्यवस्था बनाये रख सके और व्यवस्थानुसार शासन चला सके।

मैं प्रोफेसर शाह के संशोधन के विषय में, कि मंत्री राज्यपाल के प्रति उत्तरदायी होगा, एक बात और कहना चाहता हूं। मंत्री का विधान मंडल में बहुमत होता है, इस प्रकार बहुमत के द्वारा, वह जनता के प्रति उत्तरदायी होता है। यदि वह राज्यपाल के प्रति उत्तरदायी रहे और विधान मंडल के प्रति तथा विधान मंडल के द्वारा जनता के प्रति उत्तरदायी न रहे, तो विधान मंडल में बहुमत उसे हटा सकता है तथा वह अपनी स्थिति को बनाये नहीं रख सकता। वह पद धारण करे नहीं रह सकता। अतएव यह एक असंभव सुझाव है कि मंत्री कभी राज्यपाल के प्रति उत्तरदायी रह सके तथा विधान मंडल में बहुमत द्वारा जनता के प्रति उत्तरदायी न रहे। इसलिये वह विधान मंडल और जनता के प्रति उत्तरदायी होना चाहिये और राष्ट्रपति के प्रति नहीं। यही एक उपाय है जिससे संविधान के मस्विदे की योजना के अंतर्गत देश का शासन चलाया जा सकता है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): मैं वाद-विवाद में कोई मूल्यवान अंशदान करने की आकांक्षा से न बोल कर अधिकतर स्पष्टीकरण और प्रकाश प्राप्ति की इच्छा से बोलने उठा हूं।

श्रीमान्, मनोनीत राज्यपालों को रखने के विषय में अनुच्छेद को स्वीकार करते समय सदन पर इस बात का प्रभाव पड़ा था कि माननीय डा. अम्बेडकर ने हमें आश्वासन दिया था कि राज्यपाल केवल प्रतीक स्वरूप ही होगा। अब मैं माननीय डाक्टर अम्बेडकर से पूछता हूं कि क्या कोई ऐसा व्यक्ति केवल प्रतीक स्वरूप कहा जा सकता है जिसे अपने स्वविवेक से कार्य करने का अधिकार हो। मुझे बताया गया है कि मनोनीत राज्यपालों का यह उपबंध ब्रिटिश संविधान के नमूने पर रखा गया है। मैं डा. अम्बेडकर से पूछना चाहता

हूं कि क्या इंग्लिस्तान का बादशाह किसी मामले में अपने स्वविवेक से कार्य करता है? मुझे पता लगा है—शायद गलत बात हो—कि बादशाह को अपनी वधू चुनने में भी स्वविवेक का अधिकार नहीं है। यह काम सदा उसके लिये इंग्लिस्तान का प्रधानमंत्री ही करता है।

श्रीमान्, मैं जानता हूं कि राज्यपाल द्वारा अपने स्वविवेक से कार्य करने का क्या अर्थ है क्योंकि मैं भुक्तभोगी हूं और मेरे प्रांत को भी इससे हानि उठानी पड़ी है। 1942 की बात है कि एक गवर्नर ने अपने स्वविवेक द्वारा कार्य करते हुए अपना मंत्रिमंडल एक अल्पसंख्यक दल में से चुना था और वह अल्पसंख्यक दल अन्ततोगत्वा बहुसंख्यक दल बन गया था। मैं यह भी जानता हूं और सदन को भी स्मरण होगा, कि सिंध के गवर्नर द्वारा स्वविवेक के प्रयोग के फलस्वरूप एक लोकप्रिय मंत्री—श्री अल्लाहबक्श को पदच्युत होना पड़ा था। श्रीमान्, हमारे इस अनुभव के बावजूद हमें कहा जाता है कि राज्यपाल को अपने स्वविवेक से कार्य करने की शक्तियां दे दी जायें, मुझे भय है कि हम अब भी विगत काल में ही रह रहे हैं जिसे हम सब भूलना चाहते थे।

हम सदा यही सोचते थे कि एक ही व्यक्ति की इच्छा द्वारा, जो कि स्वविवेक से कार्य करने वाले राज्यपाल को नियुक्त करेगा, शासित होने के स्थान पर जनता की इच्छा द्वारा शासित होना अधिक अच्छा है। यदि राज्यपाल को अपने स्वविवेक से कार्य करने की शक्ति दे दी जायेगी तो संसार में कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो उसे ऐसा करने से रोक सके। वह बादशाह स्टार्क बन सकता है। और भी, अनुच्छेद में लिखा है कि जब भी राज्यपाल यह सोचे कि वह अपने स्वविवेक से कार्य कर रहा है, तो उससे कहीं भी उत्तर नहीं मांगा जा सकता। मंत्रियों और राज्यपालों में विवाद हो सकता है कि मंत्रियों को मंत्रणा देने की क्षमता है या नहीं; राज्यपाल की बात ही चलेगी और मंत्रियों की बात का कोई मूल्य न होगा। क्या हमें इस युग में ऐसी वस्तु को सहन करना चाहिये? क्या हमें स्वविवेक से कार्य करने वाले राज्यपाल को रखने का विचार तज देने में एक मिनट से अधिक समय लगना चाहिये? यह कहा जा सकता है कि इस मामले पर बाद में विचार किया जा सकता है। किंतु मैं अनुभव करता हूं कि एक बार हम इस उपबंध को स्वीकार कर लेंगे तो हमें यह समझने में अधिक समय नहीं लगेगा कि हमने गलती की है। ऐसा क्यों हो? क्या इस विषय में संशय की कोई गुंजाइश है? क्या ऐसा सोचने की गुंजाइश है कि इस देश में कोई भी, विधान मंडल के सदस्यों की तो बात ही छोड़िये, कभी भी इस विचार को पसंद करेगा कि एक व्यक्ति द्वारा मनोनीत राज्यपाल को स्वविवेक के प्रयोग से कार्य करने की शक्ति दे दी जाये? श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि यदि मेरी युक्ति का आधार ठीक है तो हमें राज्यपाल को स्वविवेक से कार्य करने की शक्ति प्रदान करने के उपबंध को अस्वीकार करने में एक मिनट भी नहीं खोना चाहिये।

इस अनुच्छेद के अन्तिम खंड में लिखा है कि मंत्रियों ने क्या मंत्रणा दी इस प्रश्न पर किसी न्यायालय में जांच नहीं की जा सकती। मैं इस बात पर स्पष्टीकरण चाहता

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

हूं। एक दशा में उसे मंत्रियों की मंत्रणा पर चलना है और दूसरी दशा में उसे अपने स्वविवेक के प्रयोग से कार्य करना है। क्या मंत्रियों को ऐसे विषय में राज्यपाल को मंत्रणा देने का अधिकार होगा जिनमें उसे स्वविवेक के प्रयोग का अधिकार है? यदि मुझे ठीक स्मरण है तो, 1937 में जब इस मामले पर विवाद था कि क्या मंत्रियों को उन विषयों पर मंत्रणा देने का अधिकार है जिनमें राज्यपाल अपने स्वविवेक से कार्य कर सकता है, यह समझा जाता था कि मंत्रिगण राज्यपाल को अपने स्वविवेक के प्रयोग में मंत्रणा दे सकते हैं और यदि राज्यपाल उनकी मंत्रणा को स्वीकार न करे तो मंत्रियों को यह कहने का अधिकार था कि उन्होंने क्या मंत्रणा दी थी। मैं नहीं जानता कि इस समय क्या मंशा है। ऐसे मामले हो सकते हैं जहां कि मंत्री राज्यपाल को मंत्रणा देने में सक्षम हों, किन्तु राज्यपाल उनकी मंत्रणा को न माने और कोई बात कर दे जो लोकप्रिय न हो। एक राज्यपाल, जो कि केन्द्र द्वारा मनोनीत होगा, उस प्रान्त में अलोकप्रिय रहने का साहस कर सकता है जहां कि वह कार्य कर रहा हो। यदि वह अपने प्रान्त में सेवा कर रहा हो तो लोकमत के विषय में चिन्तित हो सकता है किन्तु ऐसे प्रान्त में वह शायद लोकमत की चिन्ता नहीं करेगा, जहां कि वह केवल कार्य कर रहा हो। मान लीजिये, एक राज्यपाल, अपने मंत्रियों की मंत्रणा पर चलने की बजाय, दूसरी तरह कार्य करता है। यदि ऐसी बात के लिये जो कि राज्यपाल स्वयं करे, मंत्रियों की आलोचना की जाये, वे और मंत्री ऐसे व्यक्ति पर अभियोग लगाना चाहें, तो क्या मंत्रियों को यह कहने का अधिकार नहीं है कि उन्होंने राज्यपाल को कुछ और मंत्रणा दी थी किन्तु राज्यपाल ने भिन्न प्रकार से कार्य किया? हम मंत्रियों को यह अधिकार क्यों नहीं देते कि वे ऐसे पत्र पर, ऐसे अश्लील पत्र पर, ऐसे अज्ञानी पत्र पर, मुकदमा चला सकें जो मंत्रियों की ऐसी आलोचना करते हों? मंत्रियों को न्यायालय के समक्ष यह क्यों न कहने दिया जाये कि उन्होंने राज्यपाल को क्या मंत्रणा दी थी? मैं कहना चाहता हूं, श्रीमान्—और ऐसा कहने के लिये मुझे क्षमा करें—कि इस अनुच्छेद के पक्ष में सबसे अच्छी यही बात कही जा सकती है कि यह 1935 के भारत शासन अधिनियम की मिलती-जुलती नकल है जिसके विषय में, उसके प्रकाशन पर, इस सदन के बहुत से सदस्यों ने कहा था कि वे उसे चिमटी से भी छूना नहीं चाहते।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** अध्यक्ष महोदय, मैं नहीं समझता कि मेरे मित्र श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने श्री कामत के संशोधन पर जो कुछ कहा है उसके बाद मेरे लिये कुछ कहना या वाद-विवाद में भाग लेना अपेक्षित हो, किन्तु क्योंकि मेरे मित्र पंडित कुंजरू ने मुझसे खास तौर पर प्रश्न पूछा है और उसका उत्तर मांगा है, अत: मैंने सोचा कि शिष्टाचार के नाते मुझे कुछ शब्द कहने ही चाहियें। श्रीमान्, मुख्य और प्रधान प्रश्न यह है कि क्या राज्यपालों को स्वविवेक की शक्तियां मिलनी चाहिये। यही प्रश्न

प्रमुख और सर्वोपरि है। इस प्रश्न पर हम कुछ विनिश्चय कर लें तभी दूसरे प्रश्न पर उपयोगिता से विचार हो सकता है कि अनुच्छेद 143 के खंड (1) के अंतिम भाग में प्रयुक्त शब्दों को वहां रखा जाये या कहीं अन्यत्र स्थानान्तरित कर दिया जाये। अतः मेरा विचार है कि सर्वप्रथम मैं इस प्रश्न को ही लूं जो कि, जैसा मैंने कहा है, मुख्य प्रश्न है। वाद-विवाद के मध्य यह कहा गया है कि राज्यपाल की स्वविवेक की शक्तियां बनाये रखना प्रांतों में उत्तरदायी शासन के प्रतिकूल है। यह भी कहा गया है कि राज्यपाल की स्वविवेक की शक्तियों को बनाये रखने से 1935 के भारत शासन अधिनियम की गंध आती है, जो कि प्रधानतः अलोकतंत्रात्मक था। अब, व्यक्तिगत रूप से बोलते हुए, मेरे मन में जरा भी संशय नहीं है कि राज्यपाल की स्वविवेक की शक्तियों को बनाये रखना या उसमें यह शक्तियां निहित करना, किसी प्रकार भी उत्तरदायी शासन के प्रतिकूल या उसका निराकरण नहीं है। मैं इस प्रश्न को कुरेदना नहीं चाहता क्योंकि इस विषय में मैं कनाडा के संविधान और आस्ट्रेलिया के संविधान का हवाला देकर सदन को पूरी तरह संतुष्ट कर सकता हूं। मैं नहीं समझता कि सदन में कोई भी इस पर विवाद करेगा कि कनाडा की शासन व्यवस्था पूर्णतः उत्तरदायी शासन व्यवस्था नहीं है और न सदन में कोई यह चुनौती ही देगा कि आस्ट्रेलिया की सरकार उत्तरदायी सरकार नहीं है। यह कह कर मैं कनाडा के संविधान की धारा 55 को पढ़कर सुनाना चाहता हूं:

> ''धारा 55–जब संसद के सदनों द्वारा पारित कोई विधेयक महारानी की स्वीकृति के लिये गवर्नर-जनरल के समक्ष पेश किया जाये, तो वह स्वविवेकानुसार तथा इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए या तो महारानी के नाम में स्वीकृति दे देगा या महारानी की स्वीकृति रोक लेगा या महारानी की इच्छा की सूचना मिलने तक विधेयक को रक्षित कर लेगा।''

***पं. हृदयनाथ कुंजरूः** मैं डाक्टर अम्बेडकर से पूछ सकता हूं कि ब्रिटिश उत्तरी अमरीका अधिनियम कब पारित हुआ था?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। अधिनियम की तिथि से कुछ नहीं होता।

***श्री एच.वी. कामतः** लगभग एक शताब्दी पहले!

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** यही मेरा उत्तर है कनाडा तथा आस्ट्रेलिया वालों ने इस उपबंध को अब भी हटाना अपेक्षित नहीं समझा है। वे बिल्कुल संतुष्ट हैं कि कनाडी अधिनियम की धारा 55 में इस उपबंध को रहने देना उत्तरदायी शासन से सर्वथा संगत है। यदि वे यह अनुभव करते कि यह उपबंध उत्तरदायी शासन से संगत नहीं है तो उन्हे आज भी, अधिराज्य होने के नाते, इस उपबंध का निराकरण करने का पूरा अधिकार

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

है। उन्होंने ऐसा नहीं किया है। अतः पंडित कुंजरू को उत्तर देते समय मैं कह सकता हूं कि कनाडा और आस्ट्रेलिया वाले ऐसा नहीं समझते कि ऐसा उपबंध उत्तरदायी शासन का उल्लंघन है।

***श्री लोकनाथ मिश्र** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, एक औचित्य प्रश्न है, क्या हम कनाडा या आस्ट्रेलिया की स्थिति में रहेंगे? अथवा हम गणराज्यात्मक संविधान बनायेंगे?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** उन्होंने जो कहा, मैं उसे समझ नहीं सका। यदि सदन संतुष्ट है, जैसे कि मुझे आशा है कि राज्यपाल में कुछ स्वविवेक निहित करने का उपबंध उत्तरदायी शासन के साथ असंगत या असमन्वयित नहीं है, तो इस पर कोई विवाद नहीं हो सकता कि इस खंड को रहने देना वांछनीय है और मेरे विवेकानुसार आवश्यक है। प्रश्न केवल यही उठता है कि...।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू:** अस्तु, डाक्टर अम्बेडकर आलोचना की युक्ति को बिल्कुल समझ नहीं पाये। आलोचना यह नहीं है कि अनुच्छेद 175 में राज्यापाल को कुछ शक्तियां नहीं दी जायें, आलोचना इस बात पर की गई है कि विचाराधीन अनुच्छेद के अंतर्गत राज्यपाल को व्यापक रूप से कुछ स्वविवेक की शक्तियां क्यों दी जायें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** मेरे विचार में उन्होंने अनुच्छेद को गलत पढ़ा है। मुझे खेद है कि मेरे पास संविधान का मस्विदा नहीं है। 'Except in so far as he is by or under this Constitution' (उन बातों को छोड़ कर जिन में वह इस संविधान के द्वारा या अधीन) ये ही शब्द हैं। यदि शब्द ये होते कि ''उन बातों को छोड़ कर, जब भी वह सोचे कि उसे अपने मंत्रियों की मंत्रणा के विरुद्ध या इच्छाओं के विरुद्ध अपनी स्वविवेक की शक्ति का प्रयोग करना चाहिये'', तो मेरे विचार में मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू की आलोचना वैध होती। यह खंड तो बहुत परिमित खंड है; इसमें लिखा है–''उन बातों को छोड़ कर जिनमें वह इस संविधान के द्वारा या अधीन।'' अतएव अनुच्छेद 143 को अन्य अनुच्छेदों के साथ पढ़ना होगा, जिनमें स्पष्टतः शक्ति राज्यपाल के लिये रक्षित की गई है। यह कोई व्यापक खंड नहीं है, जिसमें राज्यपाल को शक्ति दी गई हो कि वह किसी मामले में अपने मंत्रियों की मंत्रणा की अवहेलना कर सकता है, जिसमें वह समझे कि उसे अवहेलना करनी चाहिये मेरे विचार में मेरे माननीय मित्र, पंडित कुंजरू की युक्ति में यही त्रुटि है।

अतएव जैसा मैंने कहा है, किसी विशिष्ट मामलों में राज्यपाल की स्वविवेक की शक्ति को बनाये रखना उत्तरदायी शासन व्यवस्था से बिल्कुल असंगत नहीं है, अतः केवल यही प्रश्न उठता है कि हम इस स्वविवेक की शक्ति का उपबंध कैसे करें।? मुझे प्रतीत होता है कि इसके करने के तीन उपाय हैं। एक उपाय यह है कि जैसे मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू ने कहा है, अनुच्छेद 143 से ये शब्द निकाल दिये जायें और अनुच्छेद 175 जैसे अनुच्छेदों में अथवा 188 या ऐसे अन्य उपबंधों में जोड़ दिये जायें, जो कि सदन बाद में रख दे, जिसके द्वारा राज्यपाल में स्वविवेक की शक्ति निहित कर दी जाये कि ''अनुच्छेद 143 में किसी बात के होते हुये भी, राज्यपाल को यह शक्ति होगी या वह शक्ति होगी।'' दूसरा उपाय यह है कि अनुच्छेद 143 में यह कह दिया जाये ''कि उन बातों को छोड़ कर जो अमुक अनुच्छेदों में स्पष्टतः उपबन्धित हों—अनुच्छेद 175, 188, 200 अथवा वे कुछ भी हों।'' किंतु मैं सदन से निवेदन करना चाहता हूं कि सदन को किसी न किसी रूप में यह उल्लेख करना ही पड़ेगा कि राज्यपाल को स्वविवेक की शक्ति होगी।

अब मेरे माननीय मित्र पंडित हृदयनाथ कुंजरू तथा अन्य व्यक्ति, जो उसी प्रकार बोले हैं, इस बात के पक्ष में प्रतीत होते हैं कि ये शब्द यहां से हटा देने चाहियें तथा अन्यत्र रख देने चाहियें या अनुच्छेद 143 में उन विशिष्ट अनुच्छेदों का उल्लेख कर देना चाहिये। मुझे दिखाई देता है कि ये तो केवल रचना का प्रश्न है। इसमें कोई सार का प्रश्न नहीं है और सिद्धांत का प्रश्न नहीं है। मैं व्यक्तिगत रूप से स्वयं अनुच्छेद 143 के खंड (1) के अन्तिम भाग को संशोधित करने के लिये सर्वथा उद्यत हूंगा, यदि मुझे इस समय यह पता हो कि राज्यपाल को स्वविवेक की शक्ति देने के विषय में यह संविधान सभा क्या उपबंध रखना चाहती है। मुझे यह कठिनाई अनुभव हो रही है कि हम अभी तक न अनुच्छेद 175 या 188 पर पहुंचे हैं और न हमने राज्यपाल को स्वविवेक की शक्ति देने के सम्बन्ध में अन्य उपबंध रखने की समस्त सम्भावनाओं पर विचार ही किया है। यदि मुझे पता होता, तो मैं बहुत जल्दी अनुच्छेद 143 को सुधारने और विशिष्ट अनुच्छेद की चर्चा करने के लिए उद्यत हो जाता, किन्तु अभी यह नहीं हो सकता। अतएव मेरा निवेदन है कि अनुच्छेद 143 में इस समय जो शब्द हैं उन्हें वैसे ही रहने दिया जाये तो कोई त्रुटि नहीं हो सकती। निःसंदेह वे असंगत नहीं हैं।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या इस अनुच्छेद 61 (1) के बीच, जो कि राष्ट्रपति और उसके मंत्रियों के सम्बन्धों के विषय में है कोई अन्तर नहीं है?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** हां, है; क्योंकि हम राष्ट्रपति को स्वविवेक की शक्ति नहीं देना चाहते। क्योंकि प्रांतीय सरकारों के लिए केन्द्रीय सरकार के अधीन

[माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर]

रहते हुए कार्य करना अपेक्षित है और इसलिए यह पक्का करने के लिए कि वे केन्द्रीय सरकार के अधीन रह कर कार्य करें, राज्यपाल कुछ चीजों को रक्षित रखेगा जिससे कि राष्ट्रपति को यह देखने का अवसर मिल सके कि उन नियमों पर अमल किया जाता है, जिनके अंतर्गत प्रांतीय सरकारों को संविधान के अनुसार या केन्द्रीय सरकार के अधीन रह कर कार्य करना चाहिए।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या यह अधिक अच्छा नहीं होगा कि इस प्रकार की व्यापक स्वविवेकीय शक्तियां प्रदान करने के स्थान पर स्वविवेक की शक्तियों सम्बन्धी कुछ अनुच्छेदों को संविधान में उल्लिखित कर दिया जाये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैंने यही तो कहा है कि मैं ऐसा करने के लिए बिल्कुल तैयार हूं। मैं विशिष्ट अनुच्छेदों का उल्लेख करने के लिए तैयार हूं, यदि मुझे पता ही कि राज्यपाल की स्वविवेक की शक्तियों के सम्बन्ध में सदन इस संविधान में कौन से अनुच्छेद रखने जा रहा है।

***श्री एच.वी. कामतः** इसे स्थगित क्यों न कर दिया जाये?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** हम सुधार कर सकते हैं। सदन को अनुच्छेद 143 फिर सुधारने का पूरा अधिकार है। यदि सारे को देखने के पश्चात् सदन का यह ख्याल हो कि अनुच्छेदों का स्पष्ट उल्लेख करना अधिक अच्छा रहेगा, तो सदन ऐसा कर सकता है। यह तो केवल शब्दों की बहस है।

***श्री एच.वी. कामतः** कभी आगे और कभी पीछे क्यों जायें?

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

> ''कि अनुच्छेद 143 के खंड (1) में 'except in so far as he is by or under this Constitution required to exercise his functions or any of them in his discretion' ये शब्द निकाल दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

> ''कि अनुच्छेद 143 के खंड (1) में 'head' शब्द के पश्चात् एक अर्धविराम (कामा) रख दिया जाये और 'who shall be resposible to the Governor and shall' ये शब्द रख दिये जायें और 'to' शब्द हटा दिया जाये।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 143 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

अनुच्छेद 143 संविधान में जोड़ दिया गया।

अनुच्छेद 144

(संशोधन संख्या 2164 और संशोधन संख्या 2164 पर 173 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** संशोधन संख्या 2165 डाक्टर अम्बेडकर के नाम पर है। उस पर भी संशोधन हैं, किन्तु उस संशोधन पर संशोधनों के पेश होने से पूर्व वह संशोधन पेश होगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 144 के खंड (1) के स्थान पर निम्न खंड रख दिये जायें:

'144. (1) मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करेगा तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राज्यपाल मुख्यमंत्री की मंत्रणा से करेगा तथा राज्यपाल के प्रसाद पर्यंत मंत्री अपने पद धारण करेंगे :

किन्तु बिहार, मध्यप्रांत तथा बरार और उड़ीसा राज्यों में आदिम जातियों के कल्याण के लिए भार-साधक एक मंत्री होगा जो इसके साथ अनुसूचित जातियों और पिछड़े हुए वर्गों के कल्याण का, अथवा किसी अन्य कार्य का भी, भार-साधक हो सकेगा।

(1क) परिषद् राज्य की विधान सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी।' ''

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** क्या मैं सुझाव दे सकता हूं कि माननीय डाक्टर अम्बेडकर अनुच्छेद 144 के खंड (1क) में 'परिषद' शब्द के साथ मंत्री जोड़ कर कुछ शाब्दिक हेर-फेर कर सकते हैं?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** यह बिल्कुल ठीक है। इससे यह अनुच्छेद 62 के अनुरूप हो जायेगा। मैं यह संशोधन पेश करता हूं।

***श्री महावीर त्यागीः** क्या मैं जान सकता हूं कि बिहार तथा अन्य स्थानों में उस मंत्री विशेष की नियुक्ति की क्या प्रणाली होगी? क्या यह राज्यपाल द्वारा मुख्यमंत्री की मंत्रणा पर नियुक्त किया जायेगा—नि:संदेह यह स्पष्ट है, क्योंकि आप कहते हैं 'परन्तु' और इसका यह अर्थ है कि पहले हमने जो कुछ कहा है वह इन मंत्रियों के विषय में लागू नहीं होगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** इसमें यही लिखा है कि खंड (1) के अधीन जो मंत्री नियुक्त होंगे, अर्थात् जो मुख्यमंत्री की मंत्रणा पर नियुक्त किये जायेंगे, उनमें से एक मंत्री इस विषय का भार-साधक होगा।

***अध्यक्षः** इस संशोधन पर तीन संशोधन हैं, संशोधन संख्या 134, 135 और 174।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्त प्रान्त : जनरल): मैं इन दोनों संशोधनों में से किसी को भी पेश करना नहीं चाहता। किन्तु मैं आशा करता हूं कि मस्विदा समिति इन दो संशोधनों में निहित सुझावों पर संविधान के मस्विदे पर अंतिम रूप में विचार करते समय विचार करेगी।

(संशोधन संख्या 174 पेश नहीं किया गया।)

(संशोधन सं. 2166 से 2169 तक पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 2170।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, डाक्टर अम्बेडकर ने मेरी बात पहले ही रख दी है। मैं इस संशोधन को पेश नहीं कर रहा हूं।

(संशोधन संख्या 2171, 2172 और 2173 पेश नहीं किये गये।)

***श्री मोहम्मद ताहिरः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 144 के खंड (1) में 'appointed' शब्द के स्थान पर 'chosen' शब्द रख दिया जाये और 'his pleasure' (प्रसाद-पर्यंत) इन शब्दों के पश्चात् निम्न शब्द रख दिये जायें:
>
> 'और उस समय पर्यन्त जब तक कि मंत्रिपरिषद् विधान सभा के सदस्यों की विश्वासपात्र रहती है।' ''

श्रीमान्, मैंने यह संशोधन इसलिये पेश किया है कि मंत्रिमंडल का स्थायित्व सदस्यों के ही विश्वास पर निर्भर रहता है, राज्यपाल के प्रसाद पर नहीं। हो सकता है कि कुछ

मामलों में राज्यपाल की इच्छा तथा विधानसभा के सदस्यों के विश्वास में एक प्रकार का द्वन्द्व हो जाये। यह हो सकता है कि विधानसभा के सदस्यों को मंत्रियों में विश्वास न रहे, किन्तु साथ ही राज्यपाल से लंबे सम्बन्ध के कारण मंत्रिगण राज्यपाल के प्रसाद के पात्र रहें। मैं चाहता हूं कि राज्यपाल के हाथों को अधिक मजबूत करना चाहिये, जिससे कि यदि वह देखे कि उसके प्रसाद के प्रश्न के अतिरिक्त, यदि मंत्रियों को सभा का विश्वास प्राप्त नहीं हो, तो मंत्रिमंडल का विघटन कर दिया जाना चाहिये। कई मामलों में, उदाहरणार्थ स्थानीय निकायों में मैंने देखा है कि यद्यपि सदस्यों को जिला-मंडल के सभापति में कोई विश्वास नहीं है और वे अविश्वास का प्रस्ताव पारित भी कर देते हैं, किन्तु फिर भी सभापति पद धारण किये रहता है, क्योंकि संविधान में कहीं यह उपबंध नहीं है कि अविश्वास प्रस्ताव पारित होने पर सभापति के लिये अपना पद त्यागना अपेक्षित है। ज्यों-ज्यों समय गुजरता है, सभापति अधिकाधिक सदस्यों को, जिन्होंने कि उसके विरुद्ध मतदान किया था, अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न करता है, जिसके फलस्वरूप उसमें विश्वास न करने वाले सदस्यों को सभापति के पक्ष में आना पड़ जाता है। इसी प्रकार मंत्रियों के भी संबंध में होना सम्भव है। अतएव मेरा निवेदन है कि यदि राज्यपाल देखे कि मंत्रियों को सदन का विश्वास प्राप्त नहीं है, तो उस समय भी उसे कहना चाहिये कि वे अपने पदों को रिक्त कर दें और मंत्रिमंडल का विघटन करवा दें।

श्रीमान्, इन थोड़े से शब्दों के साथ मैं प्रस्ताव पेश करता हूं।

***श्री मोहम्मद इस्माइल साहिब** (मद्रास : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, इससे पहले कि मैं अपना संशोधन पेश करूं, मैं यह कहना चाहता हूं कि आरंभ में 'so' और 'as' शब्दों के मध्य 'long' शब्द छूट गया है। शायद यह मुद्रण की त्रुटि या कुछ और है; किन्तु 'long' शब्द वहां होना चाहिये।

मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 144 के खंड (1) में 'during his pleasure' (राज्यपाल के प्रसाद पर्यन्त) इन शब्दों के स्थान पर 'so long as they enjoy the confidence of the Legislative Assembly of the State' (जब तक कि वे राज्य की विधानसभा के विश्वासपात्र रहें) ये शब्द रख दिये जायें।''

श्रीमान्, मेरे संशोधन का आशय स्पष्ट है और मैं नहीं समझता कि मुझे इस प्रस्ताव के समर्थन में अधिक शब्द कहने हैं। इस प्रश्न पर दो मत नहीं है कि मंत्रीपरिषद् विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी हो या नहीं। माननीय डाक्टर अम्बेडकर के संशोधन में भी इस उत्तरदायित्व का सुझाव है। यह माननीय डाक्टर अम्बेडकर के संशोधन के खंड (1क) में निहित है। अन्य संशोधन भी है, जिनसे यह संकेत मिलता है कि विधानमंडल के प्रति मंत्रियों का उत्तरदायित्व स्वीकृत तथ्य है। प्रश्न यह है कि राज्यपाल के प्रसाद और

[श्री मोहम्मद इस्माइल साहिब]

सदन के प्रसाद में जब अन्तर हो, तो किसकी बात चलेगी, राज्यपाल की या विधानमंडल की, अर्थात् विधानमंडल में बहुमत की।

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं, यह स्वीकृत तथ्य है कि मंत्री विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी होने चाहियें और इसलिये मेरे संशोधन में यह सुझाव है कि मेरे सुझाये हुये शब्द जोड़ कर यह बात इस अनुच्छेद में स्पष्ट और संदेह से परे कर देनी चाहिये। श्रीमान्, यह कहा जा सकता है, ऐसी परम्परा बन जायेगी, जिससे कि मेरे संशोधन में प्रस्तावित प्रक्रिया लागू हो जायेगी। परम्पराओं का तो आश्रय तब लिया जताा है जब कि हम किसी विषय में स्पष्ट निर्णय न कर सकें और अनुभव से पाठ सीखना चाहें। किंतु जनता के प्रतिनिधियों के प्रति मंत्रियों का यह उत्तरदायित्व तो संसार के अनुभव के आधार पर नि:संदेह स्वीकार कर लिया गया है। अत: इस मामले में हमें परम्परा बन जाने की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये। इसके अतिरिक्त, मेरे संशोधन में प्रस्तावित उपबंध अब तो विशेषत: अपेक्षित हो गया है, क्योंकि संविधान सभा ने विनिश्चय कर लिया है कि अब तो विशेषत: अपेक्षित हो गया है, क्योंकि संविधान सभा ने विनिश्चय कर लिया है कि राज्यपाल निर्वाचित न होकर नियुक्त होगा। शायद मस्विदा समिति ने संविधान के मस्विदे में इस अनुच्छेद को वर्तमान रूप में उस समय रखा था, जब कि उस समिति ने यह सोचा कि राज्यपाल किसी न किसी प्रकार से निर्वाचित होगा। किन्तु यह स्थिति अब बदल गई है। राज्यपाल राष्ट्रपति का मनोनीत व्यक्ति होगा। अत: मेरे विचार में यह स्पष्ट करना विशेषत: अपेक्षित है कि मंत्रिपरिषद् उसी समय तक पद धारण करे जब तक वह विधान सभा की विश्वासपात्र रहे। यह बहुत जनतंत्रात्मक और स्वीकार्य प्रक्रिया है और इसके विषय में कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिये और हम अनुभव से कुछ नहीं सीखना चाहते। अत: मेरे ख्याल में सदन मेरा आशय समझ जायेगा, जो कि बहुत स्पष्ट है और इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेगा।

(संशोधन संख्या 2176 से 2178 तक पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** मैं एक संशोधन को भूल से छोड़ गया था, वह संशोधन पर संशोधनों की मुद्रित सूची का संख्या 109 है, जिसकी सूचना श्री गुप्ते ने दी थी।

(वह संशोधन पेश नहीं किया गया।)

(संशोधन संख्या 2179 से 2184 तक पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** संख्या 2185।

***श्री मोहम्मद ताहिर:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 144 के खंड (3) के स्थान पर निम्न खंड रख दिया जाये:

'(3) कोई मंत्री उस पद पर चुने जाने के समय उस राज्य की यथास्थिति विधान सभा या विधान परिषद् का सदस्य होगा।' ''

मस्विदे में उपबंध है–

> ''कोई मंत्री जो निरंतर छः मासों की किसी कालावधि तक राज्य के विधानमंडल का सदस्य न रहे, उस कालावधि की समाप्ति पर मंत्री न रहेगा।''

यह उपबंध लोकतंत्र की भावना से मेल नहीं खाता मालूम होता। यही उपबंध 1935 के भारत शासन अधिनियम में भी था। और हां, वे साम्राज्यवाद के दिन थे और सौभाग्य है कि वे दिन अब चले गये। उस समय यह उपबंध इसलिये रखा गया था कि यदि कोई गवर्नर किसी व्यक्ति को मंत्री बनाना पसंद करे और सौभाग्यवश या दुर्भाग्यवश वह व्यक्ति देश के लोगों द्वारा निर्वाचित न हो तो उसे परोक्ष रूप से मंत्री नियुक्त कर दिया जाता था, जैसा कि संविधान में और 1935 के अधिनियम के उपबन्धित है। किन्तु अब राज्यों के लोग विधानसभा के सदस्यों को चुनेंगे और हमें निःसंदेह यह सोच लेना चाहिये कि वे राज्यों के सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों को अपना प्रतिनिधि बनाकर विधानसभा या परिषद् में भेजेंगे। अतएव मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि जिसे उस समय तक राज्यों के लोगों ने न चुना हो और जिसका अर्थ यह है कि उसे राज्यों के लोगों ने विधानसभा या परिषद् में अपना प्रतिनिधि बनाने के लिये पसंद न किया हो, तो श्रीमान् उस व्यक्ति को मंत्री नियुक्त क्यों किया जाये। मैं राज्य के लोगों की आवाज का अधिक आदर करता हूं और उसका समर्थन करने के लिये मैं निवेदन करूंगा कि वह उपबंध संविधान में नहीं रहना चाहिये और मंत्री सभा के उन्ही सदस्यों में से होने चाहिये जो कि राज्य के लोगों द्वारा निर्वाचित हों क्योंकि वे ही राज्यों के लोगों द्वारा भेजे हुये राज्यों के सच्चे प्रतिनिधि हैं। मुझे आशा है कि इस संशोधन पर माननीय सदस्य समुचित विचार करेंगे और सदन इसे स्वीकार कर लेगा।

***अध्यक्षः** इस पर एक संशोधन संख्या 176 है।

(संशोधन पेश नहीं किया गया।)

***प्रो. के.टी. शाहः** 2186 या 2189 कोई भी पेश नहीं करना चाहता क्योंकि सदन ने इन दोनों के सिद्धांत को अस्वीकृत कर दिया है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 144 के खंड (3) में 'Legislature of the State' (राज्य के विधानमंडल) इन शब्दों के स्थान पर 'Legislative Assembly of the State' (राज्य की विधानसभा) ये शब्द रख दिये जायें।

श्रीमान्, यह शाब्दिक संशोधन नहीं है। मैं नहीं कह सकता कि शायद इस धारा में यह 'संसद' शब्द का प्रयोग डाक्टर अम्बेडकर ने भूल-चूक से कर लिया हो, किन्तु मेरे विचार में इसे जानबूझकर प्रयोग किया गया है। इसका यह आशय है कि कोई ऐसा सदस्य

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

जो कि वयस्क मताधिकार के आधार पर नहीं चुना गया है और चुना नहीं जा सकता है, वह भी मंत्री बन सकता है। अनुच्छेद में कहा गया है:

> ''कोई मंत्री, जो निरंतर छः मासों की किसी कालावधि तक राज्य के विधानमंडल का सदस्य न रहे, उस कालावधि की समाप्ति पर मंत्री न रहेगा।''

इसका अर्थ यह है कि यदि एक व्यक्ति प्रथम सदन का सदस्य नहीं है, किन्तु मंत्री बना दिया जाये और मान लीजिये कि वह व्यक्ति वयस्क मताधिकार के आधार पर छः मासों में प्रथम सदन का सदस्य चुना नहीं जा सकता है, तो इस अनुच्छेद के अन्तर्गत हम यह उपबंध कर रहे हैं कि वह मंत्री बना रहेगा, यदि राज्यपाल द्वारा द्वितीय सदन का सदस्य मनोनीत कर दिया जाये। मेरे विचार में यह अलोकतंत्रात्मक है कि हमारे मंत्री ऐसे व्यक्ति हों, जो वयस्क मताधिकार के आधार पर चुने ही नहीं जा सकते। अतएव मैंने सुझाव रखा है कि इस अनुच्छेद में 'विधानमंडल' के स्थान पर 'विधानसभा' शब्द रख दिया जाये। सभा में कोई भी मनोनीत नहीं होगा और इसलिये समस्त मंत्रियों को अपने पदों पर रहने के लिये अपनी नियुक्ति के छः मासों के अंदर ही वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचन जीतना होगा। अन्यथा वे व्यक्ति जो जनता के प्रतिनिधि नहीं हैं, किन्तु मुख्यमंत्री के कृपापात्र हैं, वे प्रांतीय विधानमंडल के द्वितीय सदन में मनोनीत हो सकते हैं और वे इस अनुच्छेद के खंड (3) के अधीन मंत्रिपद पर रह सकते हैं। मैं चाहता हूं कि केवल वे ही सदस्य, जो कि वयस्क मताधिकार के निर्वाचन में निर्वाचकों का विश्वास प्राप्त कर सकें, मंत्री के पद पर आसीन रहने चाहियें। कोई भी, जो कि सीधे वयस्क मताधिकार द्वारा चुना न जा सके और प्रथम सदन का सदस्य न हो, मंत्री-परिषद् का सदस्य नहीं होना चाहिये।

***अध्यक्ष:** क्या आपके संशोधन का यह प्रभाव नहीं कि द्वितीय सदन का वह सदस्य भी मंत्रिपद प्राप्त नहीं कर सकता, जो कि निर्वाचित सदस्य हो?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** यह प्रभाव है, श्रीमान्। मैं चाहता हूं कि केवल प्रथम सदन के ही सदस्य लिये जाने चाहियें, जिसका अर्थ यह है कि केवल वे ही मंत्री बनने के योग्य होने चाहियें जो वयस्क मताधिकार द्वारा चुने जायें। यदि कोई सदस्य वयस्क मताधिकार द्वारा प्रथम सदन के लिये निर्वाचन में निर्वाचकों का विश्वास प्राप्त नहीं कर सके, तो उसे मंत्री नहीं बनाना चाहिये। यही लोकतंत्र का सार है, जिसका अर्थ है जनता की सरकार, जनता द्वारा सरकार। अतएव मेरा निवेदन है, श्रीमान्, कि इस अनुच्छेद में 'राज्य के विधानमंडल' इन शब्दों के स्थान पर 'राज्य की विधानसभा' ये शब्द रख दिये जायें। मुझे आशा है कि मस्विदा समिति इस सुझाव को स्वीकार कर लेगी।

(संशोधन 2188 से 2191 तक पेश नहीं किये गये।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** अध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 144 के खंड (4) में 'In choosing his ministers and in his relations with' इन शब्दों के स्थान पर 'In the choice of his ministers and in the exercise of his other functions under the Constitution' ये शब्द रख दिये जायें।''

श्रीमान्, यह केवल एक शाब्दिक संशोधन मात्र ही है।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 2193।

***श्री मोहम्मद ताहिरः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 144 के खंड (4) में 'but the validity of anything done by the Governor shall not be called in question on the ground that it was done otherwise than in accordance with such instruction' ये शब्द निकाल दिये जायें।''

श्रीमान्, मैंने यह संशोधन इसलिये पेश किया है कि यदि खंड रहने दिया गया, तो यह अनुदेशपत्र का स्पष्ट निराकरण होगा, जिसका कि उपबंध चतुर्थ अनुसूची में किया गया है। उस अनुसूची में राज्यपाल को कुछ अनुदेश दिये गये हैं और उसे उन अनुदेश के अनुसार चलना है। किन्तु यदि विद्यमान खंड रहने दिया जाये, तो इसका यह अर्थ होगा कि चतुर्थ अनुसूची में दिये गये अनुदेशपत्र के बावजूद राज्यपाल अन्यथा कार्य कर सकता है। अतएव यह उन अनुदेशों का स्पष्ट निराकरण है। अतएव मेरे विचार में यह अच्छा होगा, यदि मेरे बताये हुए शब्द इस खंड में से निकाल दिये जायें।

(संशोधन संख्या 2194 से 2197 तक पेश नहीं किये गये।)

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि अनुच्छेद 144 का खंड (6) हटा दिया जाये।''

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** क्यों?

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** क्योंकि हम उससे अधिक स्वविवेक की शक्तियां नहीं देना चाहते, जितनी कि कुछ अनुच्छेदों में उल्लिखित हैं। हम आपकी बात मानने का प्रयत्न कर रहे हैं।

***अध्यक्षः** इस पर श्री कामत का एक संशोधन है।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, मैं तीसरे सप्ताह की तीसरी सूची के संशोधन संख्या 177 को पेश करता हूं। मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2198 के प्रसंग से अनुच्छेद 144 के खंड (6) में निम्न नया खंड जोड़ दिया जाये:
>
> '(7) प्रत्येक मंत्री, जिसमें मुख्यमंत्री भी समाविष्ट है, अपना पद ग्रहण करने से पूर्व राज्य के विधानमंडल के समक्ष पूर्णतः प्रकट कर देगा कि उसका किसी उद्यम, कारबार, व्यापार या उद्योग में क्या हित, अंश, सम्पत्ति अथवा अधिकार है, चाहे वह निजी कार्य हो अथवा सरकार के सीधे स्वामित्व में हो अथवा सरकार द्वारा नियंत्रित हो, अथवा किसी प्रकार सरकार द्वारा सहायता प्राप्त अथवा रक्षित हो; और विधानमंडल उस मामले को ऐसे प्रकार निबटा सकता है जिस प्रकार कि वह उन परिस्थितियों में अपेक्षित अथवा समुचित समझे।
>
> प्रत्येक मंत्री, जिसमें मुख्यमंत्री भी समाविष्ट है, अपने पद का परित्याग करते समय भी ऐसी ही घोषणा करेगा।' ''

श्रीमान्, मेरे संशोधन का उद्देश्य यह है कि हमारे देश के प्रशासन में केवल कुशलता का ही नहीं, शुद्धि का भी बहुत उच्च मापदंड होना चाहिये। मुझे विश्वास है कि हम सब सहमत हैं कि किसी राज्य के या समूचे भारत के मंत्रियों को हमारे प्रशासन में ऐसी ही कुशलता तथा शुद्धि की वृद्धि करनी चाहिये। इस पर कोई विवाद नहीं कर सकता कि हमारे देश का प्रत्येक मंत्री संशय से परे होना चाहिये। श्रीमान्, दुर्भाग्यवश यह आशा सदा पूरी नहीं हुई है। हमारे कई नेताओं ने और श्रीमान्, आपने भी, हाल ही में कहा था कि इस देश में सार्वजनिक जीवन के मापदंड में कुछ अवनति हुई है। यह बहुत चिन्ताजनक तथा अत्यन्त दुःखद बात है जिसे हमें अपने समस्त उपलब्ध साधनों से रोकना है और क्या मैं सविनय निवेदन कर सकता हूं कि यह भी एक उपाय है, जिससे हम अपने सार्वजनिक जीवन तथा अपने प्रशासन में शुद्धता का बहुत ऊंचा मापदंड स्थापित कर सकते हैं तथा उसे बनाये रख सकते हैं।

श्रीमान्, क्या मैं आपकी अनुमति से अपनी युक्तियों के समर्थन में एक दो उदाहरण दे सकता हूं, जो इन्हीं दिनों, हमारे देश के कुछ भागों में दृष्टिगोचर हुए हैं? एक राज्य में, जो कि तत्पश्चात् निकटवर्ती प्रान्त में विलय हो गया है, बंबई की एक महत्त्वपूर्ण पत्रिका की खुली सूचना के अनुसार राज्य के मंत्रिमंडल में ऐसे व्यक्ति को ले लिया गया था जो चोर बाजारी पर दंडित हो चुका था। इस कथन का प्रतिवाद नहीं किया गया और इसे चुनौती नहीं दी गई। हाल ही में एक बहुत दुःखद घटना घटी है, एक राज्यसंघ

के एक मंत्री को कांस्टीट्यूशन हाउस में भ्रष्टाचार के कथित अभियोग पर गिरफ्तार करने की दुर्भाग्यपूर्ण घटना घटी है।

***अध्यक्षः** मेरे विचार में यह मामला तो अभी न्यायालय के विचाराधीन है।

***श्री एच.वी. कामतः** इसी कारण मैंने कहा है, भ्रष्टाचार के कथित अभियोग पर।

अतः मैं अपने संशोधन द्वारा यह बात निश्चित कर देना चाहता हूं कि जहां तक मनुष्य की शक्ति में है, हम प्रशासन और सार्वजनिक जीवन में शुद्धता बनाये रखने में समर्थ होंगे।

श्रीमान्, क्या मैं आपकी अनुमति से सदन में यह पढ़ कर सुना सकता हूं कि इस मामले पर पहले कभी डाक्टर अम्बेडकर ने स्वयं क्या कहा था? डाक्टर अम्बेडकर इस बात के बिल्कुल पक्ष में थे कि केन्द्र की मंत्रिपरिषद् के विषय में ऐसा संशोधन पेश किया जाये। किन्तु वे चाहते थे कि वह अधिक प्रभावशाली हो और मैंने अपने पिछले संशोधन को विस्तृत करके तथा नया पेश करके यथा शक्य डाक्टर अम्बेडकर की बात को पूरा करने का प्रयत्न किया है।

उस अवसर पर डाक्टर अम्बेडकर ने कहा था किः

> ''यदि यह आवश्यक है (अर्थात् इस प्रकार का उपबंध आवश्यक है) तो वह प्रधानमंत्रियों और राज्य के अन्य मंत्रियों के विषय में होना चाहिये, राष्ट्रपति के विषय में नहीं, क्योंकि प्रशासन पर सम्पूर्ण नियंत्रण तो उन्हीं का होता है।''

अपनी युक्ति को आगे बढ़ाते हुये अपनी स्थिति को और स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा थाः

> ''मेरे ख्याल में हमें सब को इस बात में दिलचस्पी है कि प्रशासन, केवल कुशलता की दृष्टि से ही नहीं शुद्धता की दृष्टि से भी बहुत ऊंचे स्तर पर रहे।''

आगे चल कर उन्होंने कहाः

> ''यदि आप इस उपबंध को प्रभावी बनाना चाहते हैं, तो इसमें तीन उपबंध होने चाहिये।''

फिर उन्होंने यह कहाः

> ''एक तो आरंभ में ही घोषणा (अर्थात् जब वह पद ग्रहण करे।)''

[श्री एच.वी. कामत]

''दूसरे, अपना पद त्यागते समय घोषणा:

तीसरे यह व्याख्या करने का उत्तरदायित्व, कि ये पूंजी इतनी असाधारण रूप में कैसे बढ़ी: और

चौथे, उसे एक अपराध घोषित करना तथा उसके लिये दंड या जुर्माने की व्यवस्था।''

उस समय उन्होंने जो दूसरे उपबंध का उल्लेख किया था, वह मैंने आज के अपने संशोधन में समाविष्ट कर दिया है। मैंने इस आशय का एक नया खंड रख दिया है कि प्रत्येक मंत्री अपने पद का त्याग करते समय भी ऐसी ही घोषणा करेगा और मैं देखता हूं कि प्रोफेसर शाह तो अपने एक संशोधन में एक कदम और आगे बढ़ गये हैं और उन्होंने डा. अम्बेडकर का सुझाया हुआ तीसरा उपबंध भी समाविष्ट करने का प्रयत्न किया है, जिससे कि यह खंड पूरी तरह प्रभावी हो जाये।

मंत्री की उस घोषणा पर कार्यवाही करने का काम मैंने विधानमंडल पर छोड़ दिया है। हो सकता है कि उसके कुछ अंश, अधिकार या हित हों, किन्तु विधानमंडल यह विनिश्चय कर दे कि यह मामला तुच्छ है; और वह उन अधिकारों और विशेषाधिकारों का अनुसेवन कर सकता है। मैंने यहां यह नहीं कहा है कि ऐसे मामले में क्या कार्यवाही की जानी चाहिये, जैसे कि प्रोफेसर शाह ने अपने संशोधन में कहने का प्रयत्न किया है। मैंने विधानमंडल पर उसकी इच्छानुसार इसका निर्णय छोड़ दिया है। और श्रीमान्, मुझे आशा है कि इस संशोधन को स्वीकार करके हम प्रशासन और सरकार की शुद्धता की, जहां तक मनुष्य के लिये संभव है, प्रत्याभूति दे रहे होंगे।

***प्रो. के.टी. शाह:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

''कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 3 (तीसरा सप्ताह) के संशोधन संख्या 177, दिनांक 30 मई 1949 में, अनुच्छेद 144 प्रस्तावित नये खंड (7) में:

(क) प्रथम कंडिका में–

(1) प्रथम पंक्ति में 'every' शब्द के पश्चात् 'Governor or' ये शब्द रख दिये जायें:

(2) तृतीय पंक्ति में 'disclosure' शब्द के स्थान पर 'declaration' शब्द रख दिया जाये;

(3) षष्ट पंक्ति में 'controlled by' इन शब्दों के पश्चात् 'Central or State' ये शब्द रख दिये जायें;

(4) 'और विधानमंडल उस मामले को ऐसी प्रकार निपटा सकता है जिस प्रकार कि वह उन परिस्थितियों में अपेक्षित या समुचित समझे' इन शब्दों के स्थान पर निम्न शब्द रख दिये जायें–

'और वह या तो उस हित, हक, अधिकार, अंश या सम्पत्ति को खुले बाजार में बेच देगा, या उन्हें अपनी ओर से न्यास के रूप में भारत के रक्षित बैंक को दे देगा, जो कि उससे समस्त आय, किराया, लाभ, ब्याज अथवा लाभांश को प्राप्त करेगा और उन्हें सम्बद्ध राज्यपाल या मंत्री के खाते में जमा करेगा, और उस राज्यपाल या मंत्री द्वारा पद रिक्त करने पर इस प्रकार जमा की हुई सब राशियां उसे लौटा दी जायेंगी तथा न्यास की मूल पूंजी भी उसे लौटा दी जायेगी; और

(ख) द्वितीय कंडिका में–

(1) प्रथम पंक्ति में 'every' शब्द के पश्चात् 'Governor or' ये शब्द रख दिये जायें; और

(2) अंत में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'और यदि उसकी पूंजी, हक, अधिकार, अंश, ब्याज या सम्पत्ति में विशेष परिवर्तन जो जाये, तो वह ऐसा स्पष्टीकरण देगा जो कि विधान मंडल उससे मांगना अपेक्षित समझे।' ''

मेरा संशोधित संशोधन, जो कि मैं आपकी अनुमति से सदन को पढ़ कर सुनाता हूं, इस प्रकार है:

''प्रत्येक राज्यपाल या मंत्री, जिसमें मुख्यमंत्री भी समाविष्ट है, अपना पद ग्रहण करने से पूर्व राज्य के विधान मंडल के समक्ष पूर्ण घोषणा करेगा कि उसका किसी उद्यम, कारबार, व्यापार या उद्योग में क्या हित, हक, अंश, सम्पत्ति अथवा अधिकार है, चाहे वह निजी कार्य हो अथवा केन्द्र या राज्य की सरकार के सीधे स्वामित्व में हो अथवा केन्द्र की या राज्य की सरकार द्वारा नियंत्रित हो अथवा किसी प्रकार सरकार द्वारा सहायता प्राप्त अथवा रक्षित हो और वह या तो उस हित, हक, अधिकार, अंश या सम्मत्ति को खुले बाजार में बेच देगा, या उन्हें अपनी ओर से न्यास के रूप में भारत के रक्षित बैंक को देगा, जो कि उससे

[प्रो. के.टी. शाह]

समस्त आय, किराया, लाभ, ब्याज अथवा लाभांश को प्राप्त करेगा और उन्हें सम्बद्ध राज्यपाल या मंत्री के खाते में जमा करेगा और उस राज्यपाल या मंत्री द्वारा पद रिक्त करने पर, इस प्रकार जमा की हुई सब राशियां उसे लौटा दी जायेंगी, तथा न्यास की मूल पूंजी भी उसे लौटा दी जायेगी।

प्रत्येक राज्यपाल या मंत्री, जिसमें मुख्यमंत्री भी समाविष्ट है, अपने पद का परित्याग करते समय भी ऐसी ही घोषणा करेगा और यदि उसकी पूंजी, हक, अधिकार, अंश, ब्याज या सम्पत्ति में विशेष परिवर्तन हो जाये, तो वह ऐसा स्पष्टीकरण देगा जो कि विधान मंडल उससे मांगना अपेक्षित समझे।''

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): क्या अंश बाजारों का जुआ भी इसमें आ जाता है?

***प्रो. के.टी. शाह:** हां, जुआ कई व्यक्तियों के लिये कारबार है और व्यापार भी है।

क्योंकि श्री कामत ने अपने प्रस्ताव के इतिहास को समझाने का प्रयत्न किया है, अत: क्या मैं उसे और भी सविस्तार समझाने के अभिप्राय से यह कह सकता हूं कि पिछले अवसर पर राष्ट्रपति तथा भारतीय संघ के प्रधानमंत्री के सम्बन्ध में मैंने ऐसा एक संशोधन पेश करने का प्रयत्न किया था और वह संशोधन अस्वीकृत हो गया था। किन्तु उस प्रस्ताव को अस्वीकार करते समय मस्विदा समिति के सभापति ने कृपा करके कुछ बातें कहीं थीं, जिनमें यह सुझाव था कि उस समय संशोधन की जो भाषा थी उसके कारण वह अक्रियात्मक अथवा व्यर्थ था और कुछ ऐसी शर्तों अथवा सुधारों का संकेत किया था, जिनसे वह अधिक व्यावहारिक बन सकता था। ऐसा प्रतीत होता है कि श्री कामत ने उनकी बात पकड़ ली। अब मैं इस सुखद स्थिति में हूं कि मैं उन बातों को अधिक सारवान तरीके से पेश करना चाहता हूं, जो डाक्टर अम्बेडकर के कथन के अनुकूल हों। बात केवल यही है। हमें सबको अपने प्रशासन की कार्यक्षमता तथा शुद्धता बनाये रखने और उसकी वृद्धि करने में दिलचस्पी है। मंत्री को संदेह से परे होना चाहिये और इसलिये यहां यह सुझाव दिया गया है कि यदि उन्हें प्रलोभन का कोई अवसर मिले, यदि उनका किसी कारबार, व्यापार या वृत्ति में कोई हित हो, या सम्बन्ध हो, जो किसी प्रकार केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकार द्वारा नियंत्रित या सहायता प्राप्त हो सकता हो या हो, तो वह सब भाग राज्य के विधानमंडल के समक्ष घोषित कर दिया जाना चाहिये। मैंने 'disclosure' शब्द को बदल कर 'declaration' कर दिया है, क्योंकि 'disclosure' शब्द से यह आशय निकलता है कि कोई वस्तु पहले छिपाई गई थी, जिसे अब प्रकट किया जाना है और 'declaration' शब्द पूंजी की केवल घोषणा मात्र है जो कि सम्बद्ध व्यक्ति सदन के समक्ष करेगा।

श्रीमान्, यह अच्छी परम्परा है कि संयुक्त पूंजी कंपनी के संचालक को भी संचालक का पद ग्रहण करते समय यह घोषणा करनी पड़ती है, यह प्रकट करना पड़ता है कि

क्या उसका किसी ऐसी कम्पनी का निकाय में कोई हित है, जिसमें कि उसकी कम्पनी को दिलचस्पी हो सकती हो। बम्बई नगर-निगम जैसे निकाय में भी ऐसी परंपरा है कि उसमें सदस्य तक को घोषणा करनी पड़ती है यदि कोई मामला, जिसमें उसे दिलचस्पी हो निकाय के समक्ष पेश हो। यदि ऐसी परंपरा, यदि ऐसा सार्वजनिक निकायों की साधारण विधि या आचरण में भी पाये जाते हैं, तो श्रीमान्, मैं सदन से कहता हूं कि यह और भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात है कि प्रान्तीय मंत्रियों के लिये भी इसी प्रकार मंत्री बनने से पहले किसी कम्पनी या उद्यम में अपनी पूंजी, या व्यापार या वृत्ति की घोषणा करना अपेक्षित हो।

श्रीमान्, संयुक्त राज्य ब्रिटेन के एक भूतपूर्व प्रधानमंत्री वाल्डविन की कथा प्रसिद्ध है—सुविख्यात है—कि उसने प्रधानमंत्री का पद स्वीकार करने से पूर्व वाल्डविन लिमिटेड से पूर्णतः सम्बन्ध विच्छेद कर दिया, जो कि लोहे तथा इस्पात की भारी फर्म थी और जब वे पद निवृत्त हुए, तब उन्हें वास्तव में यह घोषणा करनी पड़ी कि शायद उन के पास उतने ही सौ रह गये थे जितने कि उनके पास पद-ग्रहण के समय सहस्त्र थे। इंगलिस्तान जैसे देश की सार्वजनिक सेवा में जो त्याग करना पड़ता है, उसका यह अंग है और मुझे आशा है कि उस प्रकार के लोगों ने जो आदर्श या उदाहरण रखा है उसका इस देश में भी अनुसरण किया जायेगा। इस संशोधन द्वारा हम संविधान में ऐसा उपबंध समाविष्ट करना चाहते हैं, जिससे यह निश्चित रहे कि राज्य में राज्यपाल, मंत्री या प्रधानमंत्री जैसा उच्च पद धारण करने वाले व्यक्ति को स्वलाभ के लिये अपने प्राधिकार, शक्ति या स्थिति का प्रयोग या दुरुपयोग करने का कोई अवसर ही न मिल सके, अतः मैंने यह सुझाव रखा है कि केवल ऐसी घोषणा ही नहीं होनी चाहिये वरन् ऐसी घोषणा के पश्चात् वह हित, अंश अथवा अधिकार या तो सार्वजनिक बाजार में बेच दिया जाये जिससे कि उसके विषय में कुछ भी कहने का प्रश्न ही नहीं रहे, या ऐसा न किया जाये, तो वह सम्पत्ति, अधिकार या अंश भारत के रक्षित बैंक में न्यास रूप में रख दिया जयो, जो कि उस पर समस्त ब्याज, लाभांश, नफा या किराया प्राप्त करे और सम्बद्ध व्यक्ति के खाते में जमा कर दे, जिससे कि सम्बद्ध व्यक्ति द्वारा पद से हटने पर वह उसे लौटाया जा सके। यह ऐसा उपबन्ध है जिससे कि उस व्यक्ति को किसी प्रकार आर्थिक हानि नहीं होगी और साथ ही पदासीन होने की कालावधि में उसके आचरण की शुद्धता और उत्तमता सुरक्षित रहेगी।

मुझे पता है, श्रीमान्, कि यदि लोग मंत्री या राज्यपाल के रूप में अपने पद का दुरुपयोग करना चाहें या अनुचित लाभ उठाना चाहें, तो वे ऐसा कर सकेंगे। यदि विधि पालन का एक तरीका है, तो विधि-उल्लंघन के सौ तरीके हो सकते हैं। किन्तु साथ ही, जितना हमारे वश में है और जितना हम इन गड़बड़ों को रोकने के लिये खुले तौर पर प्रबंध कर सकते हैं, उतना करने के लिये मेरे विचार में इस प्रकार का संशोधन आवश्यक है, विशेषतः यह देखते हुए कि हमारे यहां बढ़ते हुए भ्रष्टाचार और नैतिक-पतन की, जो हमारी सार्वजनिक सेवा की सब शाखाओं में प्रवेश कर गया है, अत्यन्त सामान्य और व्यापी

[प्रो. के.टी. शाह]

शिकायत है और इसी प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए मैं यह संशोधन रख रहा हूं और मुझे विश्वास है कि यह सदन इसे अस्वीकार नहीं करेगा।

(संशोधन संख्या 2200, 2201 और 2202 पेश नहीं किये गये।)

***अध्यक्ष:** मुझे श्री जयपाल सिंह से एक संशोधन की सूचना अभी-अभी मिली है। यह देर में आया है, किन्तु यह देखते हुए कि इससे एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न पैदा होता है जो कि केवल भूल से ही रह गया था, अत: मैं उसके पेश करने की अनुमति देता हूं।

***श्री जयपाल सिंह** (बिहार : जनरल): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 144 के खंड (1) में 'State of' इन शब्दों के पश्चात् 'Bombay' शब्द जोड़ दिया जाये।''

श्रीमान्, मेरे इस विलम्बित संशोधन की अनुमति देने के लिये मैं आपका अत्यन्त आभारी हूं। आसाम के प्रांत के विषय में अनुसूची में पहले ही पर्याप्त उपबंध कर दिया गया है, किन्तु बम्बई को छोड़ दिया गया है। जब आदिम जातीय उप-समिति समवेत हुई थी, तब राज्यों के विलय का अंतिम निर्णय नहीं हुआ था। कई राज्यों के विलय के फलस्वरूप बम्बई में 44 लाख की जनसंख्या बढ़ गई है और उसमें से बहुत से आदिम जाति के और पिछड़ी हुई जातियों के लोग भी होंगे। मेरा सुझाव है कि बम्बई को भी इस अनुच्छेद में समाविष्ट कर लेना चाहिये, जिससे कि उस प्रांत में भी एक ऐसा मंत्री हुआ करे, जो अपने अन्य कर्त्तव्यों के अतिरिक्त आदिम जातियों और अन्य पिछड़ी हुई जातियों के लिये विशेष ध्यान दे सके।

मेरे माननीय मित्र श्री सिधवा आसाम के विषय में जानना चाहते थे। मैं उनका ध्यान संविधान के मस्विदे के पृष्ठ 185 की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं, जहां वे देखेंगे कि असम के लिये पर्याप्त उपबंध कर दिया गया है। मुझे अपने संशोधन के विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। यह चीज भूल से छूट गई है और मुझे आशा है कि डाक्टर अम्बेडकर मेरे संशोधन को स्वीकार कर लेंगे।

***डा. पी.एस. देशमुख:** अध्यक्ष महोदय, बहुत से संशोधन पेश किये गये हैं। उनमें से कुछ तो ऐसे हैं कि उनके विषय में इतना ही उत्तर पर्याप्त होगा कि वे जो सुझाव विशिष्ट रूप से संविधान में रखना चाहते हैं, वह संविधान के अन्य उपबंधों में आ जायेगा अथवा उस तरीके से पूरा हो जायेगा जिससे कि अब तक मंत्रिमंडल कृत्यों का निर्वहन करते रहे हैं। मैं यहां बस एक दो बातों पर ही कुछ बोलना चाहता हूं।

सबसे पहले मैं यह कहना चाहता हूं कि यदि इस परन्तुक को स्वतंत्र अनुच्छेद के रूप में स्थानान्तरित कर दिया जाये या इसे यहां अनुच्छेद 104 में स्वतंत्र उपखंड के रूप

में रख दिया जाये, तो अच्छा होगा। मैं अनुच्छेद 104 की कंडिका (1) के परंतुक के विषय में कह रहा हूं जो बिहार, मध्यप्रांत तथा बरार और उड़ीसा और श्री जयपाल सिंह द्वारा अपने संशोधन में सुझाये गये स्थान के विषय में है। मेरे विचार में यह एक सारवान उपबंध है, जो स्वतंत्र रूप से रखा जाना चाहिये, परंतुक के रूप में नहीं। मुझे यह जान कर प्रसन्नता है कि स्वतंत्र खंड जोड़ने के विषय में श्री गुप्ते का एक संशोधन है। मैं उसके पक्ष में हूं।

तत्पश्चात् मैं बम्बई को समाविष्ट करने के विषय में एक शब्द कहना चाहता हूं। मुझे श्री जयपाल सिंह के साथ पूरी सहानुभूति है। उन्होंने संक्षेप में जो कारण बताये हैं, उनको देखते हुए बम्बई को इस अनुच्छेद में उल्लिखित सूची में समाविष्ट करना उचित होगा।

इसके बाद श्री कामत का संशोधन है, जो प्रोफेसर के.टी. शाह के संशोधन से संशोधित होना है। इस पर मतभेद नहीं हो सकता कि जनता के लिये कार्य करने वाले लोग यथासंभव सच्चे हों, इस विषय में कोशिश करने में हमें कोई कसर नहीं छोड़नी है और बहुत सख्त होना है। इसी अभिप्राय से संशोधन में मंत्रियों के कारबार सम्बन्धी हितों की घोषणा का उपबंध रखा गया है। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या हमें यह बात संविधान में उपबन्धित करनी चाहिये या इस उद्देश्य के पूरा करने के अन्य उपाय हैं। मेरे मित्र श्री कामत ने सुझाव दिया है कि मंत्रियों के वैयक्तिक और कारबार संबंधी हितों की घोषणा होनी चाहिये। प्रोफेसर शाह, जो ऐसे मामलों में बारीकियों पर पहुंच जाते हैं, आगे यह भी प्रबंध करना चाहते हैं कि जब कुछ हितों के अस्तित्व का पता लग जाये, तो उनका एक विशेष प्रकार से निबटारा किया जाये। इन व्यापक संशोधनों के होते हुए भी मेरे विचार में समाज-सेवा करने वाले लोगों तथा सार्वजनिक अधिकारियों के दुराचरण की संभावना पूर्णतः दूर नहीं होती। कारबार संबंधी हितों के अतिरिक्त हजारों ऐसी बातें हो सकती हैं, जिन्हें निरुत्साहित करना अथवा रोकना भी उतना ही अभीष्ट है, जैसे कि अपने जन्म-दिवस के समारोह पर अथवा अपने पुत्र या पुत्री या अन्य संबंधियों के विवाहों पर सार्वजनिक अभिनन्दन ग्रहण करना। यदि हम यह व्यवस्था करना चाहते हैं कि हमारे मंत्री अपने उपयुक्त वेतनादि के अतिरिक्त कोई अन्य लाभ न उठायें, तो हमें इन सब बातों को भी और बहुत सी अन्य बातों को भी समाविष्ट करना होगा। इस सब चीजों की सूची तैयार करना और उनके विषय में जांच पड़ताल करने या उन्हें ठीक करने के सम्बन्ध में उपबंध करना तो ऐसी लम्बी बात है, जो कि मेरे विचार में संविधान में रखी ही नहीं जा सकती। मेरे मन में संदेह की छाया मात्र भी नहीं है कि हमारे अपने राष्ट्र के नैतिक मापदंड को ऊंचा उठाने के लिये यथासम्भव सब कुछ करना चाहिये। मैं यह कहने के लिये तैयार नहीं हूं कि इस समय वह बहुत ऊंचा है। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या ऐसा करने के लिये यह सही स्थान या उपाय है। मुझे विश्वास है कि हमारी स्वतंत्रता की, हमारी राष्ट्रीयता की और हमारे कंधों पर जो उत्तरदायित्व आ पड़ा है उसकी भावना भारत में अब बढ़ती

[डा. पी.एस. देशमुख]

जा रही है और मुझे तो आशा है कि इस उपबंध के बिना भी हमारे देश का नैतिक मापदंड ऊंचा हो ही जायेगा। किन्तु इस समय स्थिति लज्जाजनक है, इसमें संदेह का लेष भी नहीं है। बहुत कम लोग, सुसंस्कृत लोग, उच्च शिक्षा प्राप्त लोग भी सत्य का कोई मूल्य नहीं समझते और विविध प्रकार से गुप्त लाभ और फायदे उठाने का भूत सवार है। संविधान में उन सब बातों को लिख देना, जब कि मनुष्य इतना आचारहीन हो जाये कि वह नैतिक नियमों से गिर जाये, मस्विदा बनाने वालों के लिये असंभव होगा। अतः मैं इसे अच्छा समझता हूं कि इस विषय को संविधान में बिल्कुल न रखा जाये और यदि अपेक्षित हो तो उन निदेशों में, जो कि राष्ट्रपति राज्यपालों को देगा, यह बात शामिल कर दी जाये कि राज्यपाल यह ध्यान रखे कि मंत्री और प्रधानमंत्री, जो कि प्रांतीय स्वायत्त शासन की योजना के अंतर्गत इतनी शक्ति और प्राधिकार प्राप्त करेंगे, अपचार न करें और कि ऐसा अपचार हो तो राज्यपाल उसकी सूचना राष्ट्रपति को दे। यदि इन निदेशों का अनुसरण किया जायेगा तो बहुत सा अच्छा काम, जो हम चाहते हैं, पूरा हो जायेगा। वह उपाय अधिक अच्छा होगा, इसकी बजाय कि हम यह स्पष्ट मान कर अपने संविधान को गंदा करें कि हमारे सार्वजनिक कार्यकर्त्ता अपनी नैतिकता का स्वयं ध्यान रखने में असमर्थ हैं और वे किसी नैतिक सिद्धांत की परवाह नहीं करते।

अब मैं अपने उपप्रांत बरार के विषय में कुछ कहना चाहता हूं। हमने उन राज्यों के साथ मध्यप्रांत और बरार का भी नाम लिखा है, जहां कि आदिम जातियों तथा अनुसूचित जातियों के हितों पर ध्यान देने के लिये एक अतिरिक्त मंत्री होगा। यह भी कहा गया है कि उस मंत्री को अन्य कार्य भी मिल सकता है। इससे मुझे भारत शासन अधिनियम की धारा 52 का स्मरण हो आता है। बरार के सम्बन्ध में राज्यपाल पर एक विशेष उत्तरदायित्व डाल दिया गया था और उसे यह ''देखना था कि प्रांत के राजस्व का समुचित अंश बरार में या उसके लाभार्थ व्यय किया जाये।'' मैं बरार की सांविधानिक स्थिति का हवाला देकर सदन का अधिक समय नहीं लेना चाहता। किन्तु जहां एक आर्थिक दृष्टि से शोषण का प्रश्न है, मैं कह सकता हूं कि बरार को बहुत समय से यह शिकायत रही है कि उससे जो बहुत अधिक राजस्व उगाहा जाता है, उसे प्रांत के दूसरे और अधिक निर्धन भाग हड़प जाते हैं और बरार यथायोग्य लाभ प्राप्त नहीं कर पाता। हां, अब इसके लिये समय नहीं रहा है कि राज्यपाल पर बरार के विषय में कोई विशेष उत्तरदायित्व डालने के या ऐसे किसी निदेश के लिये कहा जाये। किन्तु मैं चाहता हूं कि प्रशासकों को यह याद रखना चाहिये कि बरार की आवश्यकताओं पर अब भी ध्यान देना और विचार करना अपेक्षित है।

एक और बात है और वह 25 लाख रुपये के विषय में है, जो निजाम को भाटक के रूप में दिये जाते थे। मेरे विचार में अब हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि निजाम की नाममात्र की प्रभुता आखिर पूरी तरह समाप्त हो गयी है और उसका अंत हो गया

है, और अब से हैदराबाद के निजाम और बरार के बीच कोई संबंध नहीं है। अतः मुझे आशा है कि निजाम को यह 25 लाख रुपये की राशि देने की प्रश्न अब नहीं उठेगा।

***अध्यक्षः** हमें बरार द्वारा दिये जाने वाली राशि या उसके पृथक् वित्त से कोई मतलब नहीं है। हमें यहां केवल इसी बात से मतलब है कि कुछ प्रांतों में पिछड़ी हुई आदिम जातियों के कल्याणार्थ एक मंत्री होना चाहिये।

***डा. पी.एस. देशमुखः** मैं केवल एक शब्द और कहना चाहता हूं, श्रीमान्। मैंने इस विषय की इसलिये चर्चा की है कि विशेष उत्तरदायित्व संबंधी पुराना उपबंध अंततोगत्वा समाप्त हो रहा है। क्योंकि निजाम को 25 लाख की राशि नहीं दी जायेगी, यह राशि बरार के प्रदेश में शिक्षा और चिकित्सा पर खर्च होनी चाहिये। इस विषय में मैंने गृहमंत्री को लिखा है और मुझे आशा है कि, हम 1935 के अधिनियम के उपबंधों को नहीं लिख रहे हैं इसलिये, मेरा यह सुझाव स्वीकार कर लिया जायेगा कि यह 25 लाख रुपये की राशि बरार के लोगों के लिये ही खर्च की जाये।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** अध्यक्ष महोदय, विचाराधीन अनुच्छेद 144 बहुत महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद है, अतः उसके कुछ उपबंधों के विषय में मैं सदन का कुछ समय लेने का साहस करता हूं।

पहली बात यह है कि अनुच्छेद 144 का खंड (1) अनावश्यक रूप से व्यापक है। इसमें लिखा है:

> ''राज्यपाल के मंत्री उसके द्वारा नियुक्त किये जायेंगे और वे उसके प्रसाद पर्यन्त अपने पद पर आसीन रहेंगे।''

अभी हमने अनुच्छेद 143 पर बहस की थी, जिसमें प्रश्न यह था कि राज्यपाल को स्वविवेक की शक्ति होनी चाहिये या नहीं। यहां उसका स्वविवेक बहुत ही विस्तृत हो गया है। अब, यदि राज्यपाल चाहे, तो वह अपने मंत्रियों को नियुक्त कर सकता है और मुख्यमंत्री से कहा जा सकता है कि वह ऐसे दल में से मंत्रिमंडल बना ले जो सदन में सबसे बड़ा दल न हो। इस पर कोई रोक नहीं है। मैं तो ऐसा उपबंध चाहता था कि राज्यपाल सभा में महत्तम दल के नेता से ही मंत्रिमंडल बनाने के लिये कहे। इसके अतिरिक्त श्रीमान् 'उसके प्रसाद पर्यन्त' इन शब्दों के भिन्न-भिन्न आशय निकाले जाते हैं। ऐसी परंपरा का अभी विकास होना है कि राज्यपाल को किसी मंत्रिमंडल को पदच्युत करने का तभी अधिकार है, जब वह मंत्रिमंडल विधानसभा का विश्वासपात्र न रहे। इस संबंध में दो संशोधन पेश किये गये हैं और मुझे खेद है कि मैं

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

उनमें से किसी का समर्थन नहीं कर सकता, क्योंकि प्रयुक्त शब्द ये हैं—''विधानसभा का विश्वासपात्र रहे।'' मेरा नम्र निवेदन है कि जब तक मंत्रिमंडल विधानसभा के बहुमत सदस्यों का विश्वास खो न दे, तब तक उसे पदच्युत न किया जाये। अब, यह ठीक है कि इसका एकमात्र निर्णयकर्त्ता राज्यपाल ही होगा, अतः इस संबंध में उसे बहुत शक्ति प्राप्त होगी। यदि यह उपबंध रख दिया जाता है कि जब तक मंत्रिमंडल प्रथम सदन का विश्वासपात्र रहे, तो यह मामला संदेह से परे हो जाता, और यदि राज्यपाल ऐसे मंत्रिमंडल को पदच्युत कर दे, जिस पर सदन को विश्वास हो, तो यह काम उसके अधिकारों के अन्दर नहीं होगा।

श्री सक्सेना ने खंड (3) के विषय में एक संशोधन पेश किया है वे चाहते हैं कि केवल प्रथम सभा के ही सदस्यों को मंत्री चुना जाये। इस विषय में मेरा निवेदन है कि द्वितीय सदन में बहुत से ऐसे सदस्य होंगे, जो कि नगरपालिकाओं, जिलामंडलों, ग्राम-पंचायतों आदि लोगों के निकायों द्वारा चुने जायेंगे, अतः कोई कारण नहीं है कि हम प्रथम सदन तक ही सदस्यता को सीमित रखें। मेरा निवेदन यह है, सब निर्वाचित सदस्य, चाहे वे प्रथम सदन में हों चाहे द्वितीय में, मंत्रिपद के लिये अर्ह होने चाहियें।

परंतुक के विषय में मैं एक शब्द कहूंगा। मैं मंत्रिपद के लिये परोक्ष रूप से रक्षण रखने के बहुत विरुद्ध हूं। यहां तक कि अनुसूचित जातियों, पिछड़े हुए वर्गों और आदिम जाति लोगों का सम्बन्ध है, हमने इस संविधान में अत्यन्त स्पष्ट उपबंध रख दिये हैं, जिनका उद्देश्य इन वर्गों की हालत सुधारने का है और शक्ति आरूढ़ व्यक्तियों का कर्त्तव्य ऐसी व्यवस्था करना होगा, जिससे कि इन वर्गों के हितों की अवहेलना न हो और एक पृथक मंत्री रखने की अपेक्षा नहीं है। इस संविधान में पिछड़े हुए वर्गों को दो श्रेणियों में बांटा गया है, एक तो अनुसूचित जातियां जिनके लिये रक्षण रखा गया है और दूसरे पिछड़े हुए वर्ग जिनके लिये रक्षणों की व्यवस्था नहीं है। यदि हम अनुच्छेद 301 पर दृष्टिपात करें, तो हमें पता लगेगा कि पिछड़े वर्गों का संरक्षण उस अनुच्छेद में किया गया है, जिसमें राष्ट्रपति का यह कर्त्तव्य बना दिया गया है कि वह देखे कि पिछड़े हुए वर्गों की, जिनमें अनुसूचित जातियां भी है, स्थिति सुधारी जाती है और एक आयोग द्वारा उन वर्गों की हालत की जांच करवाये और आयोग करना प्रतिवेदन दे दे तब ऐसी कार्यवाही हो जिससे कि वे सामान्य स्तर पर आ जायें। आदिम जाति लोगों के विषय में अनुच्छेद 300 में एक विशिष्ट उपबंध है, जिसमें कहा गया है:

> .....''राज्यों के अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन और अनुसूचित आदिम जातियों के कल्याण पर प्रतिवेदन करने के लिये एक आयोग की नियुक्ति आदेश द्वारा राष्ट्रपति किसी समय

कर सकेगा, और इस संविधान के प्रारंभ से दस वर्ष की समाप्ति पर तो करेगा ही।''

यदि आप अनुच्छेद 299 को देखें तो आपको यह देख कर प्रसन्नता होगी कि राष्ट्रपति और प्रत्येक राज्य दोनों विशेष अधिकारी नियुक्त करेंगे जो यह जांच करेंगे कि ये रक्षण-कवच कैसे कार्यान्वित होते हैं और इन उपबंधों पर कैसे अमल होता है। अतः राष्ट्रपति का और संघीय विधानमंडल का, जिन्हें आयोग का प्रतिवेदन पेश होगा, यह बाध्यकारी कर्त्तव्य है कि वे इसका ध्यान रखें कि पिछड़े हुए वर्गों की अवस्था में सुधार होता है। मैं नहीं समझ पाता कि विविध कृत्य-निर्वाहकों के कृत्य एक दूसरे की हद में क्यों पड़ जायें और उनके लिये मंत्रिमंडलों में रक्षण क्यों हों। जहां तक अल्पसंख्यक परामर्श समिति के प्रतिवेदन का सम्बन्ध है, उन्होंने तो यह सिफारिश नहीं की है कि पिछड़े हुए वर्गों और दलित वर्गों के लिये पृथक मंत्री रखा जाये। कल्याण-कार्य के विषय में अनुसूचित जातियों को पृथक करने का या उनका अलग उल्लेख करने का कोई कारण नहीं है, जब कि दोनों के लिये सरकार पर समान उत्तरदायित्व है। मेरा निवेदन है कि यह विभेद हटा दिया जाना चाहिये। वास्तव में अनुच्छेद 301 के विषय में कोई विभेद नहीं है। मेरा कहना यह है कि यदि अनुसूचित वर्गों या पिछड़े हुए वर्गों को विशेष संरक्षण की आवश्यकता है तो वह समग्र भारत में है, केवल मध्य भारत, उड़ीसा और बिहार में ही नहीं। मुझे यह निवेदन करना है, श्रीमान्, कि संविधान ने उनकी पहले ही रक्षा कर दी है। अछूतपन एक अपराध बना दिया गया है। मूलाधिकारों में इतने उपबंध हैं, जिनके कारण उन्हें सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश करने का विशेषाधिकार है। इस बात को देखते हुए मैं इस प्रकार के रक्षण के विरुद्ध हूं। मैं इस उपबंध के विरुद्ध इसलिये हूं कि यह स्थायी है और समस्त प्रांतों में ऐसे रक्षणों की मांग के लिये बहाना सिद्ध हो सकता है। इसके अतिरिक्त यह उपबंध केवल पहले दस वर्षों के लिए ही नहीं है, वरन् सदा के लिये है। यह हमारे संविधान पर एक धब्बा है और इसीलिये इस सदन को यह परंतुक रद्द कर देना चाहिये।

अगली बात मंत्रियों की सम्पत्ति के विषय में श्री कामत ने उठाई थी और प्रोफेसर शाह ने उसका समर्थन किया था। उन्होंने कहा था कि मंत्रियों को अपने पद पर नियुक्त होते समय और शासन छोड़ते समय भी यह प्रकट करने के लिये कहा जाये कि उनके पास क्या है और उनसे यह प्रकट करने के लिये कहा जाये कि अपने मंत्रित्व काल में उन्होंने कितना धन कमाया था और कितना संग्रह किया। यह तो परिप्रश्न हुआ। मैं नहीं समझता कि हमें मंत्रियों के विषय में ऐसे परिप्रश्नों का आश्रय लेना चाहिये। हमने अन्य प्रतिष्ठित अधिकारियों के विषय में ऐसे प्रस्तावित उपबंध को पहले ही अस्वीकृत कर दिया है।

***श्री ए.वी. ठक्कर** (सौराष्ट्र): अध्यक्ष महोदय, यद्यपि श्री जयपाल सिंह ने संशोधन की कोई सूचना नहीं दी, पर शायद, श्रीमान्, आपने उन्हें संशोधन पेश करने की अनुमति दे दी थी और वे उस पर बोले थे। मैं नहीं जानता कि वास्तविक स्थिति क्या है? किंतु क्योंकि इस सदन के तीन सदस्य इस पर बोल चुके हैं, अत: मैं इस विषय में अपना मत अभिव्यक्त करना चाहता हूं। बिहार, उड़ीसा और मध्य प्रांत के तीन प्रान्तों में आदिम जातियों, अनुसूचित जातियों और पिछड़े हुए वर्गों के हितों की चिन्ता करने के लिये और उनकी रक्षा करने के लिये पृथक-पृथक मंत्रियों की सिफारिश की गई है। अल्पसंख्यक समिति की आदिम जाति उपसमिति की सिफारिश पर ही मैंने सभापति की हैसियत से अन्य सदस्यों के साथ मिल कर यह सुझाव दिया था कि इन तीन प्रांतों में रहने वाले पिछड़े हुए लोगों की परवाह करने के उद्देश्य से संविधान में ऐसा उपबंध रख दिया जाये। इसका कारण यह है कि जब हमने ये सिफारिशें की थी तब यह समझा गया था कि इन लोगों के साथ विशेष व्यवहार करने या उनकी रक्षा करने के मामले में ये प्रांत पिछड़े हुए थे। अब इन तीन प्रांतों—बिहार, मध्यप्रांत और उड़ीसा—में अब उनके लिये, सब प्रकार के कल्याण-कार्य के लिये और उनकी रक्षा के लिये सुसंगठित विभाग है। उस समय हमने बंबई, मद्रास आदि जैसे आगे बढ़े हुए प्रगतिशील प्रांतों को शामिल नहीं किया था, क्योंकि वे उस मामले में बीस-तीस वर्षों से कार्यवाही कर रहे थे, अत: उन्हें शामिल नहीं किया गया था। कोई यह भी कह सकता है कि इन प्रांतों का उल्लेख करना उनके लिये कलंक रूप है। किंतु मैं समझता हूं कि इस समय श्री जयपाल सिंह के संशोधन में प्रस्तावित शब्द नहीं जोड़ा जाना चाहिये, जब तक कि बंबई के मंत्रिमंडल से परामर्श न कर लिया जाये या इस पर और अधिक विचार न कर लिया जाये। किन्तु, श्रीमान्, मैं इतना ही कह कर समाप्त करता हूं।

***श्री एच.वी. पातस्कर:** श्रीमान्, जहां तक अनुच्छेद 144 पर विचार करने का संबंध है, मुझे केवल उसकी भाषा पर आपत्ति है और मैं निम्न सुझाव दूंगा और मुझे आशा है कि वह उन लोगों को स्वीकार होगा जिन्होंने यह भाषा रखी है कि: ''राज्यपाल के मंत्री उसके द्वारा नियुक्त होंगे और उसके प्रसाद पर्यन्त पद धारण करेंगे।'' इससे पहले अनुच्छेद 143 है जिसमें लिखा है कि ''एक मंत्रिपरिषद् होगी।'' स्वभावत: हमें यह तो लिखना ही होगा कि मंत्रिपरिषद् को राज्यपाल नियुक्त करेगा। मेरे विचार में केवल यह लिख देना अच्छा रहता कि मंत्रिपरिषद को राज्यपाल नियुक्त करेगा। साथ ही आगे यह लिखना अवांछनीय है कि ''वे उसके प्रसाद पर्यन्त पद धारण करेंगे।'' मेरे मतानुसार यह अनावश्यक है और हम राज्य के प्रधानमंत्री और मंत्रिपरिषद् को जो पद देने जा रहे हैं उसके विरुद्ध है। कदाचित् यह उपबंध उस प्राचीन भावना का अवशेष है: मंत्री बादशाह के प्रसाद-पर्यन्त

पद धारण करते हैं। तब से स्थिति बदल गई है और अब यह अपेक्षित नहीं है कि हम वही भाषा रखें कि ''वे उसके प्रसाद पर्यन्त पद धारण करेंगे।'' मैं मानता हूं कि यदि राज्यपाल नियुक्त करने वाला प्राधिकारी है तो स्वभावत: उसे कुछ परिस्थितियों में यह शक्ति होनी चाहिये, जिसके लिये इस धारा में उपबंध रखा जा सकता है, कि मंत्रिपरिषद् का विघटन किया जा सकता है अथवा कुछ नये मंत्री नियुक्त किये जा सकते हैं, किन्तु, श्रीमान्, जब हम इस शुभ वर्ष 1949 में मंत्रि परिषद् की नियुक्ति का उपबंध कर रहे हैं, तब हमारे लिये यह कहना अपेक्षित नहीं है कि ''वे राज्यपाल के प्रसाद-पर्यन्त पद धारण करेंगे।'' हमने विनिश्चय किया है कि वह 'राज्यपाल' राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त होगा और मैं नहीं समझता कि ऐसा कहना उचित होगा कि वे उसके प्रसाद-पर्यन्त पद पर रहेंगे। यह पूछा जा सकता है कि ''यदि मंत्रियों को बदलना हो तब क्या होगा?'' मंत्रियों को केवल तभी बदलना चाहिये, जब वे सदन में बहुमत का विश्वास खो बैठें और उसके लिये निदेश-पत्र में उपबंध रखा जा सकता है, किन्तु अब अनुच्छेद 144 जिस प्रकार है, उसके विषय में मैं नहीं समझता कि हमें इस प्रकार के राज्यपाल के विषय में, जैसा कि हमने निश्चय किया है, यह रखना उचित हो कि वह मंत्रिपरिषद को नियुक्त करेगा जोकि उसके प्रसाद पर्यन्त पद धारण करेगी। यह शब्दावली अन्य सांविधानिक पुस्तकों से ले ली गई होगी और जैसा कि मैंने कहा है इसका कारण शायद यह है कि पहले जब मंत्रियों की शक्तियों का विकास हुआ था तब शायद वे मुकुट के प्रसाद-पर्यन्त पद धारण करते थे, किन्त जब कोई बादशाह नहीं होगा और इस अनुच्छेद की भाषा सुखद और उचित नहीं है, अत: मैं अपील करना चाहता हूं कि अनुच्छेद 144 के इस भाग को संविध ान में से निकाल दिया जाये।

***श्री कृष्णचन्द्र शर्मा:** श्रीमान्, मैं नहीं समझता कि इस अनुच्छेद में अनुसूचित जातियों और आदिम जाति लोगों के लिये उपबंध रखना अपेक्षित है। अनुच्छेद 37 में हमने जनता के दुर्बल भागों, और विशेषत: अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के आर्थिक और शिक्षा-संबंधी हितों के वर्धन का उपबंध रख दिया है और फिर अनुच्छेद 301 के अनुसार राष्ट्रपति एक आयोग नियुक्त करेगा जो कि पिछड़े हुए वर्गों और आदिम जातीय लोगों की उन्नति का ख्याल रखेगा। संविधान के मस्विदे में इन दो उपबंधों को ध्यान में रखते हुए, आदिम जातीय क्षेत्रों और अनुसूचित वर्गों के सम्बन्ध में एक विभाग बनाने का विशेष उल्लेख करना अनावश्यक है। यह सब बातें राज्य मंत्रालय पर छोड़ दी जानी चाहिये; वे इस विषय पर विचार कर लेंगे कि उनकी उन्नति के लिये क्या करना अपेक्षित है और किस चीज की कमी है और इस प्रकार का विस्तृत वर्णन लिखना अनावश्यक है और मैं नहीं समझता कि इस विशिष्ट उपबंध से कोई ऐसी बात हो जायेगी जो इन दोनों अनुच्छेदों से नहीं होगी। किसी दलित वर्ग के व्यक्ति से यह बात कहने से कोई लाभ नहीं है कि वह दलित वर्ग है, इसिलये उसे अमुक सुविधाएं दी गई हैं; इससे उसमें लाघव-भावना अवश्य उत्पन्न हो जाती हैं यहां वहां सुविधाएं देने से ही सदा मनुष्य की

[श्री कृष्णचन्द्र शर्मा]

उन्नति नहीं होती। यह तो अधिकतर मानसिक रचना का प्रश्न है। यदि एक व्यक्ति सोचता है ''मैं क, ख, ग, घ के तुल्य हूं'' तो वह उन्नति कर जाता है; ज्यों ही आप उसे कह देते हैं ''तुम निकृष्ट व्यक्ति हो, अतः तुम्हें अमुक सुविधाएं दी गई हैं और हम तुम्हें अन्य व्यक्ति के हितों का हनन करके ऊंचा उठा रहे हैं'' त्यों ही वह नीचे गिर जाता है। वह स्वयं उन्नति नहीं कर पाता। अतः मेरे विचार में यह बात अनुसूचित वर्गों के हित की है, (आदिम जाति लोगों के हित की है, कि उन्हें बार-बार नहीं कहा जाये कि) क्योंकि वे तुच्छ लोग हैं, क्योंकि वे दुर्बल व्यक्ति हैं, अतः उन्हे अमुक सुविधायें दी गई हैं। बात का बतंगड़ बनाने से उन्हे कोई लाभ नहीं होता। यह बात बहुत बुरी लगती है कि 'क' को छात्रवृत्ति देनी है क्योंकि वह अनुसूचित जाति का है और 'ख' जो अधिक अच्छा लड़का है और आर्थिक दृष्टि से और प्रतिभा तथा वैयक्तिक अर्हता की दृष्टि से अधिक योग्य है, इन सुविधाओं से वंचित रखा जायेगा, क्योंकि वह ब्राह्मण या क्षत्रिय जाति का है अथवा अनुसूचित जातियों से अतिरिक्त किसी जाति का है। राज्य यह कैसे कह सकता है कि एक लड़के हो अधिक सुविधाएं दी जायेंगी क्योंकि वह एक विशेष संप्रदाय या विशेष वर्ग का है, यद्यपि वे अन्य वर्ग के किसी लड़के की तुलना में जीवन की अधिक सुविधाओं को प्राप्त कर रहे हैं, केवल इसलिये कि वह भिन्न संप्रदाय का है? न्याय और औचित्य की दृष्टि से यह वस्तु असंभव है और श्रीमान्, यह बात समग्र समुदाय के हितों के अनुकूल नहीं है। अतः इन दो अनुच्छेदों को देखते हुए, जिनका मैंने उद्धरण दिया है और संविधान की व्यापक योजना की दृष्टि से, मेरे विचार में, पिछड़े हुए वर्गों के लिये अलग रखने का यह विशेष उपबंध हटा देना चाहिये।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रांत और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 144 के खंड (3) के सम्बन्ध में मैं सदन का ध्यान एक बात की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं। खंड में लिखा है: ''कोई मंत्री, जो निरंतर छः मासों की किसी कालावधि तक राज्य के विधानमंडल का सदस्य न रहे, उस कालावधि की समाप्ति पर मंत्री न रहेगा।'' मैं अनुभव करता हूं कि यह 1935 के विद्यमान भारत शासन अधिनियम के खंड की पुनरावृत्ति या नकल मात्र है। मैं नहीं समझता कि यह अब आवश्यक है, क्योंकि, नये संविधान के अंतर्गत प्रांतीय विधानमंडलों में 300 से 600 तक सदस्य होंगे और मैं नहीं समझता कि विशेष पदों के लिये भी हमें व्यक्तियों की कमी रहे। मैं इसके विरुद्ध हूं कि कोई बाह्य व्यक्ति, चाहे वह कितना भी उच्च योग्यता प्राप्त हो, मंत्रित्व के उत्तरदायी आसन पर छः मास के लिये भी बैठाया जाये। अनुभव से हमें पता लगा है कि कई बार जब ऐसे मंत्री नियुक्त किये गये, तो अंततोगत्वा इससे भ्रष्टाचार ही हुआ। छः मासों की कालावधि के पश्चात् उस मंत्री के लिये किसी को अपना स्थान छोड़ना पड़ता है और उस सज्जन को कोई अन्य पद देना होता है जिसके लिये वह अयोग्य हो, ऐसा एक दो प्रांतों में हो भी चुका है। अतः जब हमारे यहां बड़े-बड़े सदन होंगे

जिनमें विस्तृत अनुभव वाले और कई प्रकार से विशेषज्ञ व्यक्ति होंगे, तब मैं अनुभव करता हूं कि यह उचित नहीं है और बहुत अच्छा सिद्धांत नहीं है कि हम भारत शासन अधिनियम, 1935 के उपबंध की नकल करें और यह कहें कि यदि मुख्यमंत्री यह अनुभव करे कि अमुक व्यक्ति, जो सदस्य नहीं है, विशेष परामर्श के लिये चाहिये, तो उस व्यक्ति को मंत्री बना दिया जाना चाहिये। कई बार मुख्यमंत्री किसी पर कृपा करना चाहेगा। उसकी तो योग्यताएं हों उनके नाम पर उसे मंत्री बनने के लिए कहा जायेगा और छः मासों के पश्चात् उसे विधानमंडल का सदस्य बनाना होगा, क्योंकि वह छः मास के पश्चात् उस पद को धारण नहीं कर सकता। जैसा कि मैंने कहा है, श्रीमान्, किसी अन्य व्यक्ति से उसके लिये स्थान खाली कराया जायेगा और उसे और कुछ देना होगा और इससे सार्वजनिक जीवन भ्रष्ट हो जायेगा।

श्री जयपाल सिंह ने बंबई को भी जोड़ देने के सम्बन्ध में जो संशोधन रखा है, उसके विषय में मुझे कहना है कि वह सिद्धान्ततः गलत है। इस सदन की परामर्शदातृ समिति ने एक समिति नियुक्त की थी और उन्होंने समूचे प्रश्न पर विचार किया था। वे सब प्रान्तों में गये। उन्होंने सिफारिश की थी कि केवल इन्हीं प्रांतों में आदिम जातियों के कल्याण के लिये तथा अन्य किसी कार्य के लिये अलग मंत्री होना चाहिये। इस समय आकर यह कहना, कि बंबई भी समाविष्ट होना चाहिए, अत्यन्त अनुचित है। जहां तक अनुसूचित जातियों का सम्बन्ध है, वे मद्रास में बहुत हैं। जब एक समिति ने समग्र प्रश्न पर विचार कर लिया है, तब यह सिद्धांततः गलत होगा कि कोई आकर सदन में आश्चर्य के समान संशोधन लाकर रख दे कि किसी अन्य प्रांत को भी समाविष्ट करना चाहिये। उस दृष्टिकोण से मैं भी जयपाल सिंह के संशोधन का विरोध करता हूं।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरीः** अध्यक्ष महोदय, सदन में अपनी अधिकांश वक्ताओं में मैंने माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर से कई अपीलें की थी कि वे मेरे उठाये हुए कुछ प्रश्नों को स्पष्ट करके मुझे अनुगृहीत करें। इस दशा में मेरे पिछले प्रयत्न असफल रहे थे; किन्तु मुझे राजा ब्रूस के दृष्टान्त पर विश्वास है और मुझे आशा है कि इस बार मैं उनसे जो स्पष्टीकरण चाहूंगा, उस पर समुचित ध्यान दिया जायेगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** क्या हम माननीय सदस्य से मंच पर आकर सदन को संबोधित करने की प्रार्थना करें जिससे कि हम उनकी वक्तृता की अच्छी प्रकार सुनने का आनंद उठा सकें?

***श्री रोहिणी कुमार चौधरीः** (*मंच पर आकर*) मैं यह जान कर बहुत कृतार्थ हुआ कि सदन में कम से कम एक सदस्य ऐसा है जो मेरी बातों को सुनने के लिये उत्सुक है। उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिये मेरे पास शब्द नहीं हैं। इसके बदले में मैं केवल इतना ही कर सकता हूं कि वे माननीय सदस्य इस सदन में जो कुछ बोलें उस पर मैं पूरा ध्यान दूं।

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

मैं कुछ स्पष्टीकरण चाहता हूं। मैं यह जानना चाहता हूं कि मंत्रिमंडल में आदिम जातियों के सदस्यों के रक्षण के लिये विशेषत: ये ही प्रांत क्यों चुने गये हैं यदि इन प्रांतों में महत्त्वपूर्ण अल्पसंख्यक हैं तो वे, अवश्यमेव संविधान के उपबंधों के अंतर्गत, मंत्रिमंडल में स्थान प्राप्त कर लेंगे। यदि इन प्रांतों में महत्त्वपूर्ण अल्पसंख्यक नहीं है तो मंत्रिमंडल में पिछड़े हुए वर्गों और अनुसूचित जातियों को प्रतिनिधित्व देने के प्रयोजन के लिये इन प्रांतों को ही क्यों चुना गया है?

***अध्यक्ष:** मंत्रिमंडल में अनुसूचित जातियों और पिछड़े हुए वर्गों के लिये प्रतिनिधित्व का कोई प्रश्न नहीं है। उनका ध्यान रखने के लिये एक मंत्री नियुक्त होना है; यह बात नहीं है कि वह उस आदिम जाति या पिछड़े हुए सम्प्रदाय का ही व्यक्ति हो।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** खेद है, मैं यह बात समझा नहीं।

***अध्यक्ष:** इस परंतुक में कोई ऐसा प्रश्न नहीं है कि आदिम जाति लोगों का या पिछड़े हुए वर्गों का कोई व्यक्ति मंत्री नियुक्त होगा, या मंत्रिमंडल में इनमें से किसी वर्ग के लिये स्थान रक्षित होगा। केवल यही बात है कि एक मंत्री नियुक्त होगा जो उनके हितों का ध्यान रखेगा।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूं, श्रीमान्, यदि इस खंड का फिर यह अर्थ है कि कोई सदस्य आदिमजाति के कल्याण का भार-साधक चुना जा सकता है और नियुक्त हो सकता है, चाहे वह अनुसूचित जाति या आदिमजाति का हो अथवा नहीं, अर्थात् इस खंड का यही प्रयोजन है कि आदिमजातियों के मामलों का ध्यान रखने के लिये एक मंत्रिपद होना चाहिये, तो मेरे विचार में यह अनावश्यक है। आदिमजातीय लोगों को सामान्यत: यही ख्याल है कि इस उपबंध के कारण, आदिमजातीय लोगों अथवा अनुसूचित जातियों को मंत्रिमंडल में स्थान मिल जायेगा। यदि इसका यह अर्थ है कि इस परंतुक का यह आशय होना आवश्यक नहीं है कि कोई आदिमजातीय व्यक्ति या अनुसूचित जाति का व्यक्ति आदिमजातीय लोगों के कल्याण का ध्यान रखने के लिये भारसाधक बनाया जायेगा, तो मेरे विचार से यह खंड उनके लिये निराशाजनक होगा। यदि इस परंतुक का यह आशय निकाला जाना है कि, किसी सवर्ण हिन्दू या मुसलमान तक या ईसाई तक को आदिमजातीय कल्याण का ध्यान रखने का काम सौंपा जा सकता है और इसका यह अर्थ होना अपेक्षित नहीं है कि कोई आदिम जाति का सदस्य रखा जाये, तो मैं यही कहना चाहता हूं कि वह उद्देश्य आधा भी पूरा नहीं होगा।

मेरी युक्ति यह है। यदि कोई महत्त्वपूर्ण अल्पसंख्यक हो, तो उस महत्त्वपूर्ण अल्पसंख्यक अथवा अनुसूचित जातियों को मंत्रिमंडल में स्वयं प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जायेगा। यदि आप

यह नही समझते कि कोई महत्त्वपूर्ण अल्पसंख्यक है अथवा यदि आप समझते हैं कि आदिमजाति के लोग महत्त्वहीन अल्पसंख्यक हैं, तो फिर मैं नहीं समझता कि उस प्रयोजन के लिये विशेष मंत्रिपद क्यों रखा जाये। उदाहरण के लिये, क्या आप यह कहते हैं कि शिक्षा का भार-साधक मंत्री, जो कि आदिम जाति का न हो, आदिमजाति के लोगों की शिक्षा का ठीक ध्यान नहीं रखेगा, क्योंकि उसे आदिमजातियों के कल्याण का भार-साधन नहीं बनाया गया है? वह चाहे विशेष रूप से आदिमजातीय कल्याण का भार-साधक न बनाया जाये; फिर भी वह आदिमजातीय लोगों की शिक्षा का ध्यान रखेगा। शिक्षा मंत्री को वह तो करना ही होगा। लोक निर्माण कार्यों का भार-साधक कोई मंत्री आदिमजातीय क्षेत्रों में समुचित संचार का ध्यान रखेगा। आदिमजातीय कल्याण के लिये एक विशेष मंत्रिपद रखने से क्या लाभ है? आपको आदिमजातीय लोगों की विधि-व्यवस्था का ध्यान रखना होगा; आपको उनकी शिक्षा का ध्यान रखना होगा; आपको उनके स्थानीय-स्वायत्त शासन का ध्यान रखना होगा; एक मंत्री क्या कर सकता है? मंत्रिमंडल के सारे मंत्रियों को सब प्रकार से आदिमजातीय तक लोगों के हितों का ध्यान रखना होगा। यदि आदिमजातीय कल्याण के लिये आप आदिमजाति के अतिरिक्त अन्य किसी सदस्य को या अनुसूचित जाति के व्यक्ति को रख दें, तो इसका क्या अर्थ हुआ? क्या आपका यह अभिप्राय है कि वह प्रत्येक बात में अपनी टांग अड़ायेगा और कहेगा, ''आपने मेरे क्षेत्र में शिक्षा का पर्याप्त प्रबंध नहीं किया है, अथवा आपने मेरे लिये पर्याप्त सड़कें नहीं बनाई हैं अथवा आपने आदिमजाति के लोगों के स्वास्थ्य का समुचित ध्यान नहीं रखा है?'' क्या मंत्री नियुक्त करने का यही अभिप्राय है? उस प्रयोजन के लिये विशेषत: एक मंत्री नियुक्त करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि सामान्यत: प्रत्येक मंत्री को अपने विभाग के सम्बन्ध में आदिमजातियों के हितों का ध्यान रखना होगा, चाहे वह स्वयं किसी जाति का हो।

***श्री आर.के. सिधवा:** जैसे श्रम मंत्री श्रमिकों के हितों का ध्यान रखता है, इसी प्रकार आदिमजाति मंत्री भी कर सकता है।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** श्रमिकों के हित तो एक विशेष प्रकार के होते किन्तु आदिमजातीय लोगों को प्रत्येक बात से मतलब है। क्या आपका कहने का यह अभिप्राय है कि वह आदिमजातीय मंत्री केवल आदिमजाति के हितों का ही ध्यान रखेगा? यह तो सबका उत्तरदायित्व समझा जाता है; इस समय यह स्थिति है कि आसाम मंत्रिमंडल में दो आदिमजातीय मंत्री हैं और 1937 से सदा आदिमजातीय मंत्री होते हैं और आदिमजातीय मंत्री के बिना कभी मंत्रिमंडल बना ही नहीं, यह काम तो सहज ही मुख्यमंत्री पर छोड़ दिया जा सकता है जो अपने मंत्रियों को चुनेगा और वह नि:संदेह एक आदिमजातीय मंत्री को चुन कर उन लोगों के हितों का ध्यान रखेगा। अन्यथा, यदि आप केवल आदिमजातीय मामलों के लिये एक मंत्री रखेंगे तो काम में बार-बार बाधा पड़ेगी और गड़बड़ पड़ेगी, और प्रतिस्पर्धा होगी और अन्य मंत्रालयों के कार्य में अनावश्यक हस्तक्षेप होगा।

***श्री जसपतराय कपूरः** श्रीमान्, क्या आप मुझे इसकी अनुमति देते हैं कि मैं संशोधन संख्या 134 को पेश कर दूं जो मेरे नाम पर है और जिसके संबंध में मैंने कहा था कि मैं उसे पेश करना नहीं चाहता? मैं देखता हूं कि यह आवश्यक संशोधन है और मैंने बहुत से सदस्यों से परामर्श किया है जो समझते हैं कि यह पेश होना चाहिये।

***अध्यक्षः** संशोधन यह है:

> ''कि संशोधन-सूची के संशोधन संख्या 2165 में, अनुच्छेद 144 के प्रस्तावित खंड (1) में का परन्तुक हटा दिया जाये और उसका सारांश चतुर्थ अनुसूची में उल्लिखित निदेश-पत्र में समाविष्ट कर दिया जाये।''

***डा. पी.एस. देखमुखः** इतनी देर के पश्चात् इसके पेश करने की अनुमति नही मिलनी चाहिये।

***अध्यक्षः** ऐसा प्रतीत होता है कि इतनी देर के पश्चात् इस समय इस संशोधन के पेश करने पर आपत्ति है, अतः मैं इसकी अनुमति नहीं देना चाहता।

***श्री जसपतराय कपूरः** यदि किसी को आपत्ति हो तो बात और है किन्तु यह संशोधन डाक्टर अम्बेडकर और अधिकांश अन्य सदस्यों को, जिनसे मैंने परामर्श किया है, स्वीकार्य है। इसकी अनुमति देने में कोई हानि दिखाई नहीं देती। यदि डाक्टर देशमुख इस संशोधन के विरुद्ध हैं तो हां, वे इसके गुणावगुण पर बोल सकते हैं और उन्हें सदन को यह विश्वास दिलाने का अवसर मिलेगा कि वह इसे ठुकरा दें।

***अध्यक्षः** क्या इससे वाद-विवाद फिर आरंभ नहीं हो जायेगा।

***डा. पी.एस. देशमुखः** हां। यदि डा. अम्बेडकर इसे स्वीकार करने के लिये तैयार हैं, तो इसका एक और उपाय है। परन्तुक पर अलग से मतदान हो सकता है और यदि यह अस्वीकृत हो जाये, तो इसे हटाया जा सकता है।

***अध्यक्षः** यह एक उपाय है।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं इस परंतुक को हटाना स्वीकार नहीं करता, किन्तु मैं इस परंतुक को इस अनुच्छेद से हटाकर निदेश-पत्र में रखने के लिये पूर्णतः उद्यत हू।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** क्या मैं यह सुझाव दे सकता हूं कि इस अनुच्छेद को अभी रहने दिया जाये।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** क्यों, इतनी देर बहस करने के बाद?

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है कि यह यहां रहना चाहिये या निदेश-पत्र में स्थानान्तरित हो जाना चाहिये। जिस संशोधन का सुझाव दिया गया है उसका यही प्रभाव प्रतीत होता है। यदि इस संशोधन के इस समय पेश होने के विरुद्ध बहुत से सदस्य हैं, तो मैं इसे पेश नहीं होने दूंगा, किन्तु यदि यह नियम-सम्बन्धी ही आपत्ति है तो मुझे ऐसा लगता है कि मैं सदन को इस संशोधन पर भी विचार करने का अवसर दूं। मैं जानना चाहता हूं कि क्या इसके विरोध में बहुत से सदस्य हैं।

***डा. पी.एस. देशमुख:** जहां तक स्थानांतरण का प्रश्न है, उसके लिये पर्याप्त अवसर प्राप्त होंगे। इस समय यह प्रश्न उत्पन्न नहीं होता क्योंकि यह श्री गुप्ते द्वारा प्रस्तावित स्वतंत्र संशोधन है जिसे पृथक खंड के रूप में रखना है।

***अध्यक्ष:** यदि डा. अम्बेडकर का संशोधन स्वीकृत हो जाये और परन्तुक रह जाये, तो श्री गुप्ते के संशोधन की क्या स्थिति होगी?

***डा. पी.एस. देशमुख:** यदि डाक्टर अम्बेडकर यह कहने के लिये तैयार हों कि इस परन्तुक पर अभी मतदान नहीं हो, तो मेरे मित्र के संशोधन का अभिप्राय पूरा हो जायेगा। अन्यथा यह निराकरण होगा...

***अध्यक्ष:** यह निराकरण नहीं है। वे तो इस चीज को अधिनियम के बीच में से हटा कर अनुसूची और निदेश-पत्र में स्थानान्तरित करना चाहते हैं अत: यह निराकरण नहीं है; यह तो इस चीज को एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखने मात्र का प्रश्न है।

***श्री जसपतराय कपूर:** क्या मैं निवेदन कर सकता हूं, श्रीमान्, कि हमारी व्यापक नीति यही होनी चाहिये कि मेरे विचार में संविधान पर विचार करते समय हमें नियम-विवाद पर अधिक नहीं अड़ना चाहिये?

***अध्यक्ष:** मैं इस बात की सराहना करता हूं।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** इस परंतुक को स्थानान्तरित करने से इसका मूल्य न रहेगा, जोकि अब है, क्योंकि निदेश-पत्र में जो निदेश दिये हुये होते हैं उन्हें मानने के लिये राज्यपाल बाध्य नहीं है और उनका पालन न करने पर कोई उसे किसी न्यायालय में या किसी प्राधिकारी के समक्ष जवाब नहीं मांग सकता। मुझे विश्वास है कि इस परन्तुक का आधार सम्बद्ध उप-समिति में हुआ एक प्रकार का समझौता है और यदि हम इस समय इसमें कोई परिवर्तन कर देंगे तो हो सकता है कि इससे उप-समिति द्वारा निर्मित संविधान की योजना ही उलट-पुलट हो जाये।

अध्यक्ष: मेरे ख्याल से इस पर कुछ आपत्ति है, इसलिये मैं इसे इस समय पेश नहीं कर सकता। डाक्टर अम्बेडकर व्यापक वाद-विवाद का उत्तर दे सकते हैं।

***श्री जसपतराय कपूरः** क्या मैं अब यह प्रस्ताव कर सकता हूं कि इस खंड पर अंतिम विनिश्चय कल तक के लिये स्थगित कर दिया जाये।

***अध्यक्षः** इतने लम्बे वाद-विवाद के पश्चात् मेरे विचार में इससे कुछ लाभ नहीं होगा। यदि हम इसे कल तक स्थगित भी कर दें, तो भी आपका संशोधन कल तक पेश नहीं होगा।

***श्री जसपतराय कपूरः** इस अनुच्छेद पर इतना वाद-विवाद करने के पश्चात्, इस पर कुछ और विचार करना अपेक्षित प्रतीत होता है। इस लम्बे वाद-विवाद से पता लगता है कि इस पर मतभेद है और यह संभव है...

***अध्यक्षः** यह स्थिति कल प्रातःकाल तक नहीं बदलेगी। डाक्टर अम्बेडकर!

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** अध्यक्ष महोदय, भिन्न-भिन्न संशोधनों पर जो बहस हुई है उसमें मैंने देखा है केवल चार बातें हैं जिन पर उत्तर देना अपेक्षित है। बहस में पहली बात यह कही गई है कि यह उपबंध करने की बजाय कि मंत्री प्रसाद पर्यन्त पद धारण करेंगे, यह अभीष्ट है कि ऐसा उपबंध किया जाये कि वे उस समय तक पद धारण करेंगे, जब तक कि वे सदन के बहुमत के विश्वास-पात्र रहें। अब, मुझे संदेह नहीं है कि इस संविधान का यही उद्देश्य है कि मंत्रिमंडल उसी कालावधि तक पद धारण करेगा, जब तक कि वह बहुमत का विश्वास-पात्र रहे। संविधान उसी सिद्धांत पर कार्यान्वित होगा। हमने इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है, इसका कारण यह है कि उस रूप में यह बात किसी संविधान में उल्लिखित नहीं है जो कि संसदीय शासन पद्धति पर आधारित संविधान हो। 'प्रसाद पर्यन्त' का सदा यही मतलब लगाया जाता है कि मंत्रिमंडल बहुमत का विश्वास खो बैठे उसके बाद 'प्रसाद' नहीं बना रहेगा। ज्योंही मंत्रिमंडल बहुमत का विश्वास खो बैठेगा, त्योंही यह मान लिया जायेगा कि राष्ट्रपति अपने 'प्रसाद' का प्रयोग करके मंत्रिमंडल को हटा देगा, अतएव समस्त उत्तरदायी शासनों में जो रूढ़िगत वाक्य प्रयुक्त होता है उससे भिन्न भाषा का यहां प्रयोग करना अनावश्यक है। मुझे भय है, कि मेरे मित्र प्रोफेसर सक्सेना का संशोधन, जो कि 'प्रथम सदन' शब्द रखने के विषय में था, स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि संविधान के उपबंधों के अन्तर्गत, प्रधानमंत्री को अधिकार है कि वह अपना मंत्रिमंडल केवल प्रथम सदन में से ही नहीं वरन् द्वितीय सदन में से भी चुन सके। हमारी यह योजना नहीं है कि मंत्री प्रथम सदन से ही लिया जाये, द्वितीय सदन से नहीं। परिणामतः बिना निर्वाचित हुये छः मास तक मंत्री नियुक्त करने का उपबंध ऐसा विस्तृत होना चाहिये कि उसमें दोनों आ जायें, इस कारण मैं उनके संशोधन को स्वीकार करने में असमर्थ हूं।

तीसरा संशोधन, जिस पर बहुत वाद-विवाद हुआ है, मेरे मित्र श्री कामत और प्रोफेसर शाह ने पेश किया था। छोटे-मोटे संशोधनों के सिवाय, वे लगभग एक से ही थे। उस सम्बन्ध में, मैं यह कहना चाहता हूं कि सभा को याद होगा कि अनुच्छेद पर, जो कि

अनुच्छेद 144 के समान ही है, प्रोफेसर शाह ने संशोधन संख्या 1332 पेश किया था और उस पर लम्बी बहस हुई थी। उस अवसर पर मैंने इस विषय में अपने विचार अभिव्यक्त किये थे, इसलिये मैंने जो कुछ कहा था उसके अतिरिक्त अब कुछ और कहना सर्वथा अनावश्यक है।

***श्री एच.वी. कामतः** मेरे माननीय मित्र डाक्टर अम्बेडकर ने उस समय उस संशोधन को इसलिये स्वीकार नहीं किया था कि उनके विचार में वह पर्याप्त रूप से व्यापक नहीं था। अब यह अधिक व्यापक है।

***अध्यक्षः** यह सब बातें आप पहले ही कह चुके हैं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकरः** चौथा प्रश्न मेरे मित्र श्री जयपाल सिंह ने और किसी हद तक श्री रोहिणी कुमार चौधरी ने भी उठाया है। इस खंड विशेष को संविधान के मस्विदे में रखने का कारण यह है कि यह आदिमजाति के लोगों से सम्बद्ध उपसमिति की सिफारिशों में है, जिसे कि संविधान सभा की अल्पसंख्यक समिति ने नियुक्त किया था। उस समिति के प्रतिवेदन में, आप देखें कि उसके साथ एक परिशिष्ट है जिसका नाम 'कानूनी सिफारिशें' है। इस अनुच्छेद में जो परन्तुक रखा गया है वह उस समिति विशेष के सुझाव और सिफारिश की शब्दशः नकल है। उसमें कहा गया है कि बिहार, मध्यप्रांत और बरार तथा उड़ीसा के प्रांतों में आदिमजातियों के कल्याण के लिये एक पृथक मंत्री होगा, परन्तु इसके साथ ही वह मंत्री अनुसूचित जातियों और पिछड़े हुए वर्गों के कल्याण के संबंध में किसी कार्य का या किसी अन्य कार्य का भी भार-साधक हो सकेगा। अतः मस्विदा समिति के पास इस परन्तुक को रखने के सिवाय कोई चारा न था। क्योंकि यह आदिमजाति संबंधी उपसमिति के प्रतिवेदन के उस भाग में जिसे 'कानूनी सिफारिश' का नाम दिया गया है। समिति की यह इच्छा थी कि यह उपबंध संविधान में ही आना चाहिये और उसके किसी अन्य अंग में नहीं डाला जाना चाहिये। इस कारण मस्विदा समिति ने इसे रखा है और यह अन्य समिति की ही सिफारिश के अनुसार है।

मेरे मित्र श्री जयपाल सिंह ने जो सुझाव दिया है कि बंबई को भी शामिल कर लेना चाहिये क्योंकि बंबई प्रदेश में जो विलय हुए हैं, उनके फलस्वरूप आदिमजाति लोगों की संख्या बढ़ गई है, उस सुझाव के विषय में मुझे खेद है कि इस समय मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि इस मामले में बंबई के मंत्रिमंडल से परामर्श लेना अपेक्षित है और दुर्भाग्य से मेरे मित्र माननीय श्री खेर, जो पिछले कुछ दिनों संविधान सभा में उपस्थित थे, अब यहां नहीं हैं, अतः मैं इस संशोधन को स्वीकार नहीं कर सकता।

***श्री एच.वी. कामतः** मेरे संशोधन के विषय में मैं जानना चाहता हूं कि क्या डा. अम्बेडकर पहले अभिव्यक्त किये हुए अपने विचारों से पीछे हट गये हैं?

***अध्यक्ष:** मैं नहीं समझता कि इस प्रकार की जिरह की अनुमति दी जा सकती है।

अब मैं संशोधनों को लेता हूं।

इस अनुच्छेद 144 के खंड (1) के सम्बन्ध में श्री ताहिर और श्री मोहम्मद इस्माइल के दो संशोधन, संख्या 2174 और 2175 हैं।

यदि डा. अम्बेडकर का संशोधन स्वीकृत हो गया तो वे स्वत: गिर जायेंगे। अत: मैं डा. अम्बेडकर के संशोधन पर मत लेता हूं।

अध्यक्ष: प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 144 के खंड (1) के स्थान पर निम्न खंड रख दिये जायें:

'144. (1) मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करेगा तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राज्यपाल करेगा तथा राज्यपाल के प्रसाद पर्यन्त मंत्री अपने पद धारण करेंगे; किन्तु बिहार, मध्यप्रांत तथा बरार और उड़ीसा राज्यों में आदिमजातियों के कल्याण के लिये भार-साधक एक मंत्री होगा जो इसके साथ अनुसूचित जातियों और पिछड़े हुए वर्गों के कल्याण का अथवा किसी अन्य कार्य का भी भार-साधक हो सकेगा।

(1क) मंत्रिपरिषद् राज्य की विधान सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी।' ''

संशोधन स्वीकृत हो गया

***अध्यक्ष:** जैसा कि मैं कह चुका हूं, दो संशोधनों, संख्या 2174 और 2175 का प्रश्न ही नहीं उठता।

तत्पश्चात् श्री ताहिर का संख्या 2185 है।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 144 के खंड (3) के स्थान पर निम्न खंड रख दिया जाये:

'(3) कोई मंत्री उस पद पर चुने जाने के समय, उस राज्य की यथास्थिति विधानसभा या विधान-परिषद् का सदस्य होगा।' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** तत्पश्चात् प्रोफेसर सक्सेना का संशोधन सं. 2187 है।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 144 के खंड (3) में 'Legislature of the State' इन शब्दों के स्थान पर 'Legislative Assembly of the State' ये शब्द रख दिये जायें।' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** तत्पश्चात् डा. अम्बेडकर का संशोधन संख्या 2192 है।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 144 के खंड (4) में 'In choosing his ministers and in his relation with them' इन शब्दों के स्थान पर 'in the choice of his ministers and in the exercise of his other functions under the Constitution' ये शब्द रख दिये जायें।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 144 के खंड (4) में, 'but the validity of anything done by the Governor shall not be called in question on the ground that it was done otherwise than in accordance with such instruction' ये शब्द निकाल दिये जायें।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्षः** फिर हम श्री कामत के संशोधन पर आते हैं, जिस पर प्रोफेसर शाह ने दूसरा संशोधन पेश किया था। मैं प्रोफेसर शाह के संशोधन पर पहले मत लूंगा।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारीः** डाक्टर अम्बेडकर का संशोधन संख्या 2198 भी है।

***अध्यक्षः** मैं उस पर अंत में मत लूंगा। अब मैं प्रो. शाह के संशोधन सं. 185 पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

''कि संशोधनों पर संशोधनों की सूची 3 (तीसरा सप्ताह) के संशोधन संख्या 277, दिनांक 30 मई 1949 में, अनुच्छेद 144 के प्रस्तावित नये खंड (7) में–

(क) प्रथम कंडिका में–

(1) प्रथम पंक्ति में 'every' शब्द के पश्चात् 'Governor or' ये शब्द रख दिये जायें;

[अध्यक्ष]

(2) तृतीय पंक्ति में 'disclosure' शब्द के स्थान पर 'declaration' शब्द रख दिया जाये;

(3) षष्ट पंक्ति में 'controlled by' इन शब्दों के पश्चात् 'Central or State' ये शब्द रख दिये जायें;

(4) और विधानमंडल उस मामले को इसी प्रकार निबटा सकता है जिस प्रकार की वह, उन परिस्थितियों में अपेक्षित या समुचित समझे इन शब्दों के स्थान पर निम्न शब्द रख दिये जायें:

'और वह या तो उस हित, हक, अधिकार, अंश या सम्पत्ति को खुले बाजार में बेच देगा या उन्हें अपनी ओर से न्यास के रूप में भारत के रक्षित बैंक को दे देगा; जो कि उससे समस्त आय, किराया, लाभ, ब्याज अथवा लाभांश को प्राप्त करेगा और उन्हें सम्बद्ध राज्यपाल या मंत्री के खाते में जमा करेगा और उस राज्यपाल या मंत्री द्वारा पद रिक्त करने पर इस प्रकार जमा की हुई सब राशियां उसे लौटा दी जायेंगी तथा न्यास की मूल पूंजी भी उसे लौटा दी जायेगी;

(ख) और द्वितीय कंडिका में:

(1) प्रथम पंक्ति में 'every' शब्द के पश्चात् 'Governor or' ये शब्द रख दिये जायें; और

(2) अन्त में निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'और यदि उसकी पूंजी, हक, अधिकार, अंश, ब्याज या सम्पत्ति में विशेष परिवर्तन हो जाये तो, वह ऐसा स्पष्टीकरण देगा जो कि विधानमंडल उससे मांगना अपेक्षित समझे।''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 2198 के प्रसंग से, अनुच्छेद 144 के खंड (6) में निम्न नया खंड जोड़ दिया जाये:

'(7) प्रत्येक मंत्री जिसमें मुख्यमंत्री भी समाविष्ट है, अपना पद ग्रहण करने से पूर्व राज्य के विधानमंडल के समक्ष पूर्णत: प्रकट कर देगा कि उसका किसी उद्यम, कारबार, व्यापार या उद्योग में क्या हक, अंश, सम्पत्ति अथवा अधिकार हैं, चाहे वह निजी कार्य हो अथवा सरकार के सीधे स्वामित्व में हो अथवा सरकार द्वारा नियंत्रित हो अथवा किसी प्रकार सरकार द्वारा सहायता प्राप्त अथवा रक्षित हो, और

विधानमंडल उन मामले को ऐसे प्रकार निबटा सकता है जिस प्रकार कि वह उन परिस्थितियों में अपेक्षित अथवा समुचित समझे।

प्रत्येक मंत्री, जिसमें मुख्यमंत्री भी समाविष्ट है, अपने पद का परित्याग करते समय भी ऐसी ही घोषणा करेगा।' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 144 का खंड (6) हटा दिया जाये।''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 144 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 144 संविधान में जोड़ दिया गया।

नवीन अनुच्छेद 144-क

***अध्यक्ष:** श्री बी.एम. गुप्ते ने एक संशोधन की सूचना दी है कि अनुच्छेद 144 के पश्चात् एक नया अनुच्छेद 144-क रख दिया जाये। वह इस प्रकार है:

''कि अनुच्छेद 144 के पश्चात्, निम्नलिखित नवीन अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:

'144-क बिहार, मध्यप्रांत तथा बरार और उड़ीसा के राज्यों में आदिमजातियों के कल्याणार्थ भार-साधक एक मंत्री होगा, जो इसके साथ अनुसूचित जातियों और पिछड़े हुए वर्गों के कल्याण का अथवा किसी अन्य कार्य का भी भार-साधक हो सकेगा।' ''

मेरे विचार में, अभी जो अनुच्छेद स्वीकृत हुआ है उसमें यह समाविष्ट है। अत: यह पेश नहीं किया जा सकता ।

अनुच्छेद 145

***डा. पी.के. सेन** (बिहार : जनरल): मैं संशोधन संख्या 2205 को पेश नहीं करना चाहता, किन्तु मैं कुछ बातें कहना चाहता हूं।

***अध्यक्ष:** जब अनुच्छेद पर बहस आरम्भ हो, तब आप ऐसा कर सकते हैं।

(संशोधन संख्या 2204 और 2206 पेश नहीं किये गये।)

(संशोधन संख्या 136 और 176 को क्रमश: तृतीय और चतुर्थ सूचियों के थे, पेश नहीं किये गये।)

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिम बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 145 के खंड (2) के पश्चात् निम्न नवीन खंड जोड़ दिया जाये:
>
> '(2क) अपने कर्त्तव्यों के पालन में महाधिवक्ता को उस राज्य के, जिसमें वह लगा हुआ है, समस्त न्यायालयों में सुनवाई का अधिकार होगा और उस राज्य की ओर से पेश होते समय, भारत के राज्य-क्षेत्र के अंतर्गत अन्य सब न्यायालयों में भी, जिनमें उच्चतम न्यायालय समाविष्ट है, सुनवाई का अधिकार होगा।' ''

मैं चाहता हूं कि महाधिवक्ता को उस राज्य के, जिसमें वह महाधिवक्ता है, समस्त न्यायालयों में, बिना किसी विशेष प्राधिकार के, सुनवाई का अधिकार हो, और जब वह अपने राज्य की ओर से पेश हो, तब उसे अन्य राज्यों में भी, तथा फेडरल न्यायालय में भी ऐसा ही अधिकार हो। मेरी युक्ति अनुच्छेद 63, खंड (3) के उदाहरण पर आधारित है। संविधान के मस्विदे के अनुच्छेद 62 में ऐसा हो उपबंध है जिससे कि भारत के महान्यायवादी को भारत के राज्य-क्षेत्र के सब न्यायालयों में सुनवाई का अधिकार है। उस अनुच्छेद का खंड (3) इस प्रकार है:

> ''अपने कर्त्तव्यों के पालन के लिये महान्यायवादी को भारत राज्य-क्षेत्र में के सब न्यायालयों में सुनवाई का अधिकार होगा।''

महान्यायवादी के लिये यह उपबंध है कि वह अपने पद के कारण भारत के राज्य-क्षेत्र में के प्रत्येक न्यायालय में पेश हो सकता है, किन्तु ऐसा कोई उपबंध नहीं है जिससे कि महाधिवक्ता को उस राज्य के समस्त न्यायालयों में पेश होने की शक्ति या प्राधिकार हो, जिसमें कि वह लगा हुआ हो और अन्य न्यायालयों में भी तथा उच्चतम न्यायालय में भी पेश होने का प्राधिकार हो, जब किसी वाद में उसका राज्य एक पक्ष के रूप

में हो। यदि हम यहां अनुच्छेद 63 के खंड (3) के समान कोई खंड नहीं रखे तो प्रत्येक मामले में राज्य के लिये अपेक्षित होगा कि वह महाधिवक्ता को आवश्यकता होने पर पेश होने का प्राधिकार दे। इस विधि रूप उपबंध के बिना उसे प्रत्येक वाद में प्राधिकार प्राप्त करना होगा और पंजीकरण की कठिनाइयां हो सकती हैं। बिहार का वकील पश्चिमी बंगाल का महाधिवक्ता नियुक्त हो सकता है। शायद वह पटना के उच्च न्यायालय में पंजीबद्ध हो और कलकत्ता के उच्च न्यायालय में न हो। यह कठिनाई होगी, कि यद्यपि वह पश्चिमी बंगाल का महाधिवक्ता होगा, किन्तु उसे पंजीकरण की कठिनाइयों के कारण कलकत्ता उच्च न्यायालय के किसी अधीन न्यायालय में पेश होने का अधिकार नहीं होगा और यह भी हो सकता है कि जिस राज्य में वह महाधिवक्ता हो वह राज्य भी किसी अन्य राज्य में किसी वाद में एक पक्ष के रूप में हो: वहां भी उसे उस राज्य की ओर से जिसका वह महाधिवक्ता है, किसी लिखित प्राधिकार के बिना तथा पंजीकरण की कठिनाई के बिना, पेश होने का प्राधिकार मिलना चाहिये।

दंड प्रक्रिया संहिता में भी लोक-अभियोजक के लिये ऐसा ही उपबंध है। उस संहिता की धारा 493 में उसे प्राधिकार किया गया है कि वह उस जिले में किसी वाद में स्वत: पेश हो सकता है, जिसका कि वह लोक-अभियोजक है। व्यवहार वादों में पेश होने वाले सरकारी वकील के लिये भी ऐसा ही उपबंध है।

अत: मेरा निवेदन है कि वह एक आवश्यक उपबंध है, अन्यथा मैंने जो कठिनाइयां सुझाई हैं वे और अन्य ऐसी ही कठिनाइयां उत्पन्न हो जायेंगी। यह उन उपबंधों के समान ही है जो राज्य की ओर से पेश होने वाले सब वकीलों के लिये रखे गये हैं और कोई कारण नहीं है कि महाधिवक्ता के लिये भी इसे सिद्धांतत: स्वीकार क्यों न कर लिया जाये। यदि इस सिद्धांत को स्वीकार कर लिया जाये कि महाधिवक्ता को उन सब न्यायालयों में बिना प्राधिकार सुनवाई का अधिकार होना चाहिये, जिनमें वह राज्य पक्ष के रूप में हो, तो मेरे विचार में यहां ऐसा उपबंध रख देना चाहिये। यदि रचना पर कोई आपत्ति हो तो मस्विदा समिति इस पर विचार करके समुचित मस्विदा पेश कर सकती है।

यह संशोधन इसी सिद्धांत पर आधारित है।

(संशोधन संख्या 179, 2208 और 2209 पेश नहीं किये गये।)

***श्री नजीरूद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं अपने संशोधन को एक छोटे से मौखिक परिवर्तन के साथ पेश करना चाहता हूं, जिस पर मुझे पता लगा है, डाक्टर अम्बेडकर को कोई आपत्ति नहीं है। श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

> ''कि अनुच्छेद 145 के विद्यमान खंड (3) और (4) के स्थान पर निम्न खंड रख दिया जाये:
>
> (3) महाधिवक्ता के प्रसाद पर्यन्त पद धारण करेगा तथा राज्यपाल द्वारा निर्धारित पारिश्रमिक पायेगा।' ''

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

श्रीमान्, खंड (3), विद्यमान रूप में इस प्रकार है:

> "(3) राज्य के मुख्यमंत्री के पदत्याग पर, महाधिवक्ता अपने पद से निवृत्त होगा, पर वह अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति अथवा अपनी पुनर्नियुक्ति होने तक पदासीन रह सकेगा।"

इस उपबंध से बहुत सी असुविधा उत्पन्न हो जायेगी। मेरा निवेदन है कि महाधिवक्ता की पदावधि राजनैतिक धांधली पर निर्भर नहीं रखनी चाहिये। यह सर्वथा सम्भव है कि महाधिवक्ता किसी लम्बे वाद में व्यस्त हो, जिसमें राज्य को दिलचस्पी हो। अकस्मात् उसको हटाना राज्य के हितों पर विपरीत प्रभाव डालेगा। अत: यह अधिक अच्छा है कि उसकी पदावधि राज्यपाल के प्रसाद पर निर्भर रखी जाये।

मुझे पता लगा है कि यह संशोधन बिल्कुल उसी तरह का है, जैसा कि डाक्टर अम्बेडकर ने स्वयं सुझाया है और यह उन्हें स्वीकार्य है। अत: मैं आशा करता हूं कि सदन इसे स्वीकार कर लेगा।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** क्या आप संशोधन संख्या 2211 को पेश नहीं कर रहे हैं?

***अध्यक्ष:** उन्होंने उसे अपने संशोधन में शामिल कर लिया है। यह बिल्कुल आपके संशोधन जैसा ही है, अत: अब उसके पेश करने की आवश्यकता नहीं है।

***श्री जसपत राय कपूर:** अध्यख महोदय, मेरे माननीय मित्र श्री नजीरुद्दीन अहमद ने जो संशोधन संख्या 2207 पेश किया है, उसके समर्थन में मुझे एक ही युक्ति और पेश करनी है। अनुच्छेद 145 के खंड (1) के अनुसार, प्रत्येक राज्य का राज्यपाल, उच्च न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त होने की अर्हता रखने वाले व्यक्ति को, राज्य का महाधिवक्ता नियुक्त करेगा। अब, श्रीमान्, जो पारंगत विधिवेत्ता होगा वह भी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने के लिये अर्ह है और इस कारण यह महाधिवक्ता नियुक्त होने के लिये भी अर्ह होगा। यह संभव हो सकता है कि एक पारंगत विधिवेत्ता उच्च न्यायालय का नियमानुसार पंजीबद्ध अधिवक्ता न हो। यदि किसी पारंगत विधिवेत्ता को महाधिवक्ता नियुक्त कर दिया जाये और यदि संयोगवश वह उच्च न्यायालय का नियमानुसार पंजीबद्ध सदस्य नहीं है, तो उसे नि:संदेह किसी उच्च न्यायालय में या अधीन न्यायालय में पेश होने का हक नहीं होगा। इस बात को ध्यान में रखते हुए, श्रीमान्, मेरे विचार में यह अपेक्षित है कि श्री नजीरुद्दीन अहमद के संशोधन को, या कम से कम उसके सारांश को, स्वीकार कर लिया जाये। यह कहा जा सकता है कि यह तो आकस्मिकता तभी ही घटेगी कि उच्च न्यायालय में पंजीबद्ध न हुए विधिवेत्ता को महाधिवक्ता नियुक्त कर दिया जाये। मैं मानता हूं कि ऐसा हो सकता है। किन्तु जब हम इस संविधान में छोटी-छोटी बातों को रखने के लिये कटिबद्ध हैं, तो मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता कि यह कसर क्यों रहने दी जाये।

***श्री के.एम. मुंशी** (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं अपने माननीय मित्र श्री नजीरुद्दीन अहमद द्वारा पेश किये गये संशोधन (संख्या 2207) का विरोध करने के लिये खड़ा हुआ हूं। संशोधन का कारण यह प्रतीत होता है कि भारत के महाधिवक्ता और प्रांत के महाधिवक्ता के कृत्यों के विषय में भ्रान्ति है। भारत का महाधिवक्ता—जिसका नाम हमने इस संविधान में ''महान्यायवादी'' रखा है—वास्तव में भारत भर में कृत्य करने वाला महाधिवक्ता होगा। उदाहरणार्थ, जब भी संविधान की व्याख्या का कोई प्रश्न विद्यमान व्यवहार प्रक्रिया संहिता के अधीन किसी न्यायालय में उठेगा, तो उसमें पेश होने के लिये भारत सरकार को सूचना दी जायेगी। अत: भारत के महाधिवक्ता को केन्द्र के हितों का समर्थन करने के लिये समस्त प्रांतीय न्यायालयों में पेश होना पड़ेगा।

प्रांत के महाधिवक्ता की स्थिति सर्वथा भिन्न है। अपने प्रांत में तो, स्वभावत: महाधिवक्ता होने के नाते, उसे प्रांत के समस्त न्यायालयों में सुनवाई का अधिकार है। किन्तु अन्य प्रांतों में, महाधिवक्ता होने के नाते उसकी कोई हैसियत नहीं है। उसकी स्थिति वही होगी जो कि उच्च न्यायालय के एक अधिवक्ता की होती है और इसलिये उस पर लीगल प्रेक्टीशनर्स अधिनियम के उपबंध लागू होंगे। अन्य प्रांतों में महाधिवक्ता होने के नाते उसकी कोई स्थिति नहीं है, अत: कोई कारण नहीं है कि उसे भारत के महाधिवक्ता के समान स्थिति प्रदान की जाये। साधारणत: एक प्रांत का महाधिवक्ता अन्य प्रांत के उच्च न्यायालय में राज्य संबंधी मुकदमों के प्रयोजन से नहीं जाता। वह वहां अपनी निजी वकालत के अभिप्राय से जाता है, और इसलिये उस मामले में वह उन शर्तों के अधीन ही पेश हो सकता है, जो उस न्यायालय ने नियत की हैं, जिसमें कि वह पेश होना चाहता है।

साधारणत: उच्च न्यायालय का एक दूसरे के अधिवक्ता को अपने यहां आने देते हैं। किन्तु ऐसी घटनाएं हो चुकी हैं जबकि एक उच्च न्यायालय ने दूसरे के अधिवक्ता को विविध कारणों से, जो वैध या अवैध हो सकते हैं, अपने यहां पेश होने की अनुमति नहीं दी। किसी उच्च न्यायालय के अधिवक्ता के दूसरे उच्च न्यायालय में पेश होने का अधिनियम उस दूसरे उच्च न्यायालय के नियमों और नीति पर निर्भर है। अत: यह अधिक अच्छा है कि दूसरे उच्च न्यायालय में महाधिवक्ता के पेश होने का प्रश्न भी लीगल प्रेक्टीशनर्स अधिनियम द्वारा अधिनियमित हो, जो कि इस वृत्ति के अन्य सदस्यों पर लागू है।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद:** महाधिवक्ता के लिये निजी वकालत का मैं समर्थन नहीं करता। जब वह अपने राज्य की ओर से अन्य उच्च न्यायालय में पेश हो, तभी यह प्रश्न उठता है। क्या मैं इस तथ्य की ओर आपका ध्यान आकृष्ट कर सकता हूं कि मैं नहीं चाहता कि महाधिवक्ता निजी वकालत करे? जब वह अपने राज्य की ओर से अन्य उच्च न्यायालय में पेश हो, तभी यह प्रश्न उठता है। अत: निजी वकालत का प्रश्न नहीं उठता। अपने राज्य की ओर से महाधिवक्ता के उच्चतम न्यायालय में पेश होने का क्या उपबंध रखा गया है?

***श्री के.एम. मुंशी:** महाधिवक्ता के अन्य प्रान्त में जाकर पेश होने के विषय में किसी को कठिनाई अनुभव हुई है। कोई कारण नहीं है कि इसके लिए विशेष उपबंध रखा जाये।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** श्रीमान्, मैं एक बात की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं। हमने इन मामलों के विषय में अपने संविधान में ब्रिटिश तरीके को आदर्श माना है। ब्रिटेन के महान्यायवादी की स्थिति मंत्री के बराबर होती है। डा. सेन ने एक संशोधन की सूचना दी थी कि महाधिवक्ता को वही पद दिया जाये, किन्तु उन्होंने उसे पेश नहीं किया। मैं इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं कि यदि हम इंग्लिस्तान के तरीके पर ही चलें तो अच्छा हो। मैं डा. अम्बेडकर से प्रार्थना करता हूं कि वे हमें बतायें कि इस विषय में वे उस आदर्श पर क्यों नहीं चलते?

***डा. पी.के. सेन:** श्रीमान्, मैं इस बात को अच्छी तरह समझता हूं कि इस बहस को कम से कम मुझे तो लम्बा नहीं करना चाहिये और मैं अपनी वक्तृता को यथासंभव शीघ्र ही समाप्त करूंगा।

मैं इस सदन में जो कुछ कहना चाहता हूं वह मेरे संशोधन के समर्थन में नहीं है, क्योंकि उसे तो में पेश ही नहीं कर रहा हूं, वरन् महाधिवक्ता के पद के विषय में जो मूलभूत सिद्धांत हैं मैं उनके बारे में अपने विचार अभिव्यक्त करूंगा। इस समय महाधिवक्ता नि:संदेह प्रान्त का सुविख्यात वकील होता है, किन्तु उसके कृत्य तथा कर्त्तव्य केवल ये ही हैं कि वह कुछ मामलों में सरकार को परामर्श दे जो उन वादों में उठते हैं जो या तो सरकार और किसी गैर-सरकारी पक्ष के बीच में हों या ऐसे पक्षों के मध्य हों जो किसी न किसी प्रकार सरकार से सम्बद्ध हों। उदाहरणार्थ कोई न्यास की सम्पत्ति सरकार के पास हो और कोई उस न्यास के विषय में विवाद करे। इस प्रकार के कई मामलों में महाधिवक्ता की राय पूछी जाती है। उसका कार्यालय वास्तव में विधि सम्बन्धी परामर्श का केन्द्र होता है इसी प्रकार लीगल रिमेम्ब्रेन्सर या न्यायिक सचिव का कार्यालय भी होता है। इनमें से किसी मामले में सरकार उसकी राय पूछने या उसे स्वीकार करने के लिये बाध्य नहीं है और कई विषयों में उसकी खास बात की परवाह नहीं की जाती। मान लीजिये कि श्रम अथवा राजस्व अथवा स्थानीय स्वशासन का भार-साधक मंत्री कुछ कानून बनाना चाहता है। नि:संदेह वह महाधिवक्ता से परामर्श करता है किन्तु वह महाधिवक्ता की सम्मति की चिन्ता न करके किसी अन्य घटिया, अनुत्तरदायी अधिवक्ता की राय ले सकता है और उस पर चल सकता है। मुझे यह सब सिद्धांतों के विरुद्ध दिखाई देता है। मेरे विचार में महाधिवक्ता का पद इससे कहीं ऊंचा होना चाहिये। उसकी स्थिति मंत्री के बराबर होनी चाहिये। फिर विधि मंत्री बहुत हद तक सरकार की विधायिनी और प्रशासनीय

रचना पर प्रभाव डाल सकता है। इस बात को बहुत हद तक भुला दिया गया है, और वास्तव में, विधि-मंत्री के अधीन मुकुट का विधि-अधिकारी, महाधिवक्ता मुश्किल से ही कुछ कर सकता है, चाहे वह बहुत विद्वान व्यक्ति हो जो कि विधान कार्य पर प्रभाव डाल सके। उसकी शक्तियां लगभग नहीं के समान होती हैं। जैसी कि मेरी धारणा है, महाधिवक्ता की स्थिति बहुत अधिक ऊंची होनी चाहिये। जब तक उसकी स्थिति मंत्री के बराबर न हो, उसके लिए अपने कर्त्तव्यों का समुचित रूप में निर्वहन करना असंभव है। दूसरे शब्दों में, इसका यह अर्थ है कि मेरी विनीत राय के अनुसार, महाधिवक्ता पर विधि-विभाग का कार्यभार होना चाहिये। न्यायालयों में उपस्थिति का प्रश्न उठ सकता है। फिर वह मुकदमों में क्यों पेश होता फिरे? सब समय महाधिवक्ता यह समझता है कि सरकार की ओर से छोटे न्यायालयों में या उच्च न्यायालय में पेश होकर फीस कमाना उसका विशेषाधिकार है। अस्तु, यदि उस पर विधिमंत्री के कार्यालय के कर्त्तव्यों का भी भार रख दिया जाये तो यह बात महत्त्व की नहीं रहेगी उसका सर्वाधिक प्रमुख कर्त्तव्य यह होगा कि वह सरकार के विधान सम्बन्धी और कार्यपालिका ढांचे में उच्च स्तर स्थापित करे और कायम रखे। फिर वह सब मामले में फीस के लिये जाकर पेश नहीं हो सकता; किन्तु उच्च नीति सम्बन्धी मामले में, वह नि:संदेह ही महाधिवक्ता की हैसियत से अपनी सरकार की नीतियों और सिद्धांतों की व्याख्या, उच्च स्तर पर, न्यायालयों के समक्ष जाकर दे सकता है। आजकल हम बहुत संकट के समय से गुजर रहे हैं बहुत सी अस्थिर नीतियां दिखाई देती हैं और सब प्रकार के विभेदात्मक विधान बनाये जा रहे हैं जिनसे प्रकट होता है कि उन्हें अत्यन्त बुद्धिहीनता तथा अकुशलता से बनाया गया है। मेरा निवेदन यह है कि महाधिवक्ता उन थोड़े से लोगों में से है, जिसे यदि विधिमंत्री के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया जाये, तो वह सब प्रकार से विधान की नीति के अधिनियमन, रूपकरण और निश्चय करने में बहुत बड़ा भाग ले सकता है। मेरी तुच्छ सम्मति में, विधि-राज्य ऐसा राज्य है जो सरकार को सब प्रकार की विघटनशील शक्तियों से बचा सके। इन उच्च कृत्यों का भार-धासक विधिमंत्री हो तो सरकार के लिये यह संभव होगा कि वह ठीक तरीके से और ठीक दिशा में बढ़ सके। ये ही बातें मैं अनुच्छेद 145 के सम्बन्ध में विनम्रतापूर्वक सदन के समक्ष पेश करता हूं।

***माननीय डा. बी.आर. अम्बेडकर:** मैं नहीं समझता कि जो बहस हुई है उस पर मेरे लिये कुछ और कहना अपेक्षित है। मैं तो बस यही कहना चाहता हूं। मैं श्री नजीरुद्दीन अहमद का संशोधन संख्या 2210 स्वीकार करने के लिये तैयार हूं।

***अध्यक्ष:** अब मैं श्री नजीरुद्दीन अहमद के संशोधन संख्या 2207 पर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 145 के खंड (2) के पश्चात् निम्न नवीन खंड जोड़ दिया जाये।

[अध्यक्ष]

(2क) अपने कर्त्तव्यों के पालन में, महाधिवक्ता को उस राज्य के, जिसमें वह लगा हुआ है, समस्त न्यायालयों में सुनवाई का अधिकार होगा, और उस राज्य की ओर से पेश होते समय, भारत के राज्यक्षेत्र के अंतर्गत अन्य सब न्यायालयों में भी, जिसमें उच्चतम न्यायालय समाविष्ट है, सुनवाई का अधिकार होगा।' ''

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी:** श्रीमान्, इस संशोधन की संख्या क्या है?

***अध्यक्ष:** मैं इस संशोधन पर फिर मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 145 के खंड (2) के पश्चात् निम्न नया खंड जोड़ दिया जाये।

'(2क) अपने कर्त्तव्यों के पालन में, महाधिवक्ता को उस राज्य के, जिसमें वह लगा हुआ है, समस्त न्यायालयों में सुनवाई का अधिकार होगा और उस राज्य की ओर से पेश होते समय, भारत के राज्यक्षेत्र के अंतर्गत अन्य सब न्यायालयों में भी, जिनमें उच्चतम न्यायालय समाविष्ट है, सुनवाई का अधिकार होगा।' ''

संशोधन अस्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** अब मैं संशोधन संख्या 2210 पर मत लेता हूं, जिसमें 2211 भी समाविष्ट है:

प्रश्न यह है:

''कि अनुच्छेद 145 के खंड (3) और (4) के स्थान पर निम्न खंड रख दिये जायें:

(3) महाधिवक्ता राज्यपाल के प्रसाद पर्यन्त पद धारण करेगा, तथा राज्यपाल द्वारा निर्धारित पारिश्रमिक पायेगा।' ''

संशोधन स्वीकृत हो गया।

***अध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

''कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 145 संविधान का भाग हो।''

प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

संशोधित रूप में अनुच्छेद 145 संविधान में जोड़ दिया गया।

***अध्यक्ष:** अब हम कल सवेरे के 8 बजे तक के लिये उठ जायेंगे।

इसके पश्चात् संविधान सभा बृहस्पतिवार, 2 जून 1949 के आठ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।